प्राचीन
पश्चिमी शिक्षा का इतिहास

लेखक

सीताराम जायसवाल एम० ए० एल० टी०

(शिक्षाशास्त्र, नवीन शिक्षा-मनोविज्ञान, शिक्षण-विधान,
शिक्षा-सिद्धांत और प्रयोग आदि पुस्तकों के रचयिता)

प्रकाशक

नंदकिशोर एंड ब्रदर्स

बनारस

प्रथम संस्करण]   १९४९   [मूल्य २॥)

संसार की खोजें : शिक्षा इतिहास

(प्रस्तुत पुस्तक लेखक ने युक्तप्रांतीय शिक्षा-विभाग के संचालक की आज्ञा नम्बर G/1/3175/XVII. 18 (1) दिनांक जुलाई १४'४७ के अनुसार लिखा, और इसका सर्वाधिकार बिना किसी आर्थिक लाभ के श्री सुदामा देवी के लिए सुरक्षित कर दिया।)

मुद्रक—ह० मा० सप्रे, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस।

भूमिका

'शिक्षा का इतिहास' वास्तव में 'संसार की खोज' की कहानी है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' लिखकर भारत के इतिहास को एक नये दृष्टिकोण से रखा। मैडम मैरिया मांटसोरी ने 'डिस्कवरी ऑफ द चाइल्ड' लिखकर बाल-मनोविज्ञान पर एक नवीन प्रकाश डाला। अतः शिक्षक होने के नाते 'संसार की खोज' में मैंने शिक्षा के इतिहास को देखा।

शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करते समय मेरी दृष्टि समाज की ओर विशेष रूप से रही है, क्योंकि शिक्षा का इतिहास सामाजिक दशाओं से पूर्णतः प्रभावित होता है। इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सामाजिक भूमिका का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए मैंने प्रत्येक अध्याय में तत्कालीन समाज का चित्रण किया है और फिर शिक्षा के उद्देश्य, संगठन, पद्धति और विषय का वर्णन किया है। शिक्षा का जो प्रभाव समाज पर पड़ता है, उसका भी शिक्षा के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए अध्यायों के अंत में 'समाज पर प्रभाव' भी दिया गया है। इस प्रकार 'शिक्षा के इतिहास' को प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया है। यह प्रयास कहाँ तक सफल है, इसका निर्णय पाठक ही कर सकेंगे। लेकिन पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने की दृष्टि से यह

निवेदन है कि मेरा ध्यान त्रुटियों की ओर आकर्षित किया जाय, जिससे कि आवश्यक संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत पुस्तक 'शिक्षा के इतिहास' के प्रथम भाग का प्रथम खंड है। प्रकाशक ने पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक के खंडों को भी अलग से प्रकाशित करने की व्यवस्था की है। अतः हम उनके आभारी हैं। पुस्तक लिखते समय मैंने अनेक लेखकों के ग्रंथों से सहायता ली है। अतः उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

सीताराम जायसवाल

विषय-सूची

विषय

१. आदिम शिक्षा

सभ्यता और संस्कृति—सभ्यता का के चित्र—पारिवारिक जीवन—आदिम शिक्षा के उद्देश्य—आदिम शिक्षा का प्रभाव।

२. प्राचीन मिश्र और शिक्षा ७–१४

मिश्री सभ्यता की देन—मिश्र की सभ्यता का विकास—खेती और सिंचाई—अवकाश से विकास—धार्मिक विश्वास—शिक्षा का स्वरूप—शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा के विषय—शिक्षा की पद्धति और संगठन।

३. मेसोपोटामिया १५–१९

दजला और फरात का प्रदेश—सुमेरी लोग—अक्कादी लोग—हम्मुरबी की देन—असीरी लोग—काल्दी लोग—शिक्षा और संस्कृति।

४. यहूदी और उनकी शिक्षा २०–२९

यहूदी जाति—मिश्र में यहूदी—यहूदियों पर विपत्ति—मोजेज—मोजेज की शिक्षा—शिक्षा का स्वरूप—शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा में व्यावहारिकता—माता-पिता द्वारा शिक्षा—अनिवार्य शिक्षा—शिक्षा के विषय—शिक्षण पद्धति—यहूदियों की उच्च शिक्षा—समाज पर प्रभाव।

५. यूनानी शिक्षा : सांस्कृतिक भूमिका ३०–४०

हेलेनी लोग—हेलेनियों का यूनान में प्रवेश—यूनानी

विषय पृष्ठ

नगर-राज्य—यूनानी जनतंत्र—यूनान के नगर—एथेन्स का महत्त्व—सामाजिक जीवन—दास-प्रथा—दासों की दशा—यूनानी सादगी—दास-शिक्षक—स्पार्टा और एथेन्स।

६. यूनानी शिक्षा का स्वरूप ४१–४९

प्रगतिशीलता—व्यक्ति और समाज में संतुलन—व्यक्तित्व का विकास—नैतिकता—जिज्ञासा और उत्सुकता—सौंदर्य की उपासना—यूनानी शिक्षा का सार—यूनानी शिक्षा की त्रुटियाँ—दास-प्रथा—नारी की अवहेलना—समाज के प्रति उदासीनता—वाक्-चातुर्य की प्रधानता—आध्यात्मिक अभाव।

७. यूनानी शिक्षा का होमर-युग ५०–५५

होमर युग—होमर के महाकाव्य—महाकाव्य का शिक्षा में स्थान—होमरयुगीन शिक्षा—होमर के आदर्शों का प्रभाव: कर्मशीलता—निर्णय शक्ति का विकास—होमर युगीन शिक्षा का समाज पर प्रभाव।

८ यूनानी शिक्षा का प्राचीनकाल : स्पार्टी शिक्षा ५६–६९

प्राचीन यूनानी शिक्षा—शिक्षा में नागरिकता—अभिजात वर्ग का प्रभाव—स्पार्टी समाज—स्पार्टी आर्थिक व्यवस्था—स्पार्टी शिक्षा का उद्देश्य—स्पार्टी शिक्षा का संगठन : जन्म से सात वर्ष तक—आठ वर्ष से बारह वर्ष तक—तेरह वर्ष से अठारह वर्ष तक—अठारह वर्ष के बाद—वृद्धों का शिक्षण कार्य—शिक्षा के विषय—नैतिक-शिक्षा—नारी-शिक्षा—स्पार्टी शिक्षा में त्रुटियाँ।

विषय पृष्ठ

९. एथेन्स की शिक्षा ७०-८१

एथेन्स का महत्त्व—महात्मा सोलन का कार्य—शिक्षा का संगठन—बालक के प्रथम सात वर्ष—आठ से सोलह वर्ष तक—सत्रह से अठारह वर्ष तक—अठारह वर्ष के बाद—सैनिक दक्षता की तैयारी—एथेन्स की शिक्षा के उद्देश्य—एथेन्स की शिक्षा के विषय—एथेन्स की शिक्षण-पद्धति—समाज पर प्रभाव।

१०. नवीन यूनानी शिक्षा ८२-९२

नवीन यूनान : पेरीक्लीज़ युग—पेरीक्लीज़ के अनुसार नवीन यूनान—नवीन यूनान का मनुष्य—यूनान का शिक्षालय एथेन्स—राजनीतिक परिस्थितियाँ—सामाजिक परिस्थितियाँ—सांस्कृतिक जीवन—सोफिस्ट शिक्षक—सोफिस्ट शिक्षा का उद्देश्य—सोफिस्ट शिक्षा के विषय—सोफिस्ट शिक्षा का संगठन—सैनिक शिक्षा का पतन—समाज पर प्रभाव।

११. सुकरात और उसकी शिक्षा ९३-१०१

सुकरात का प्रारम्भिक जीवन—सुकरात का रूप-गुण—ऐतिहासिक भूमिका—सुकराती शिक्षा का उद्देश्य—सुकराती शिक्षा के विषय—सुकराती पद्धति—समाज पर प्रभाव।

१२. प्लैटो और उसकी शिक्षा १०२-११८

प्लैटो का परिचय—प्लैटो में परिवर्तन—प्लैटो का भ्रमण—एथेन्स में पुनरागमन—प्लैटो का 'रिपब्लिक'—प्लेटो के राजनीतिक विचार—आदर्श समाज 'यूटोपिया' का व्यक्ति—व्यक्ति का मनोविज्ञान—प्लैटो की शिक्षा के उद्देश्य—सुकराती उद्देश्य से तुलना—शिक्षा के विषय—

विषय पृष्ठ

शिक्षा-संगठन और पद्धति—प्रथम दस वर्ष में व्यायाम—शिक्षा में स्वतंत्रता—युवकों की शिक्षा—दर्शन का अध्ययन—शिक्षा-संगठन का सारांश—स्त्री-शिक्षा—समाज पर प्रभाव—प्लैटो की त्रुटियाँ।

१३. अरस्तू और उसकी शिक्षा ११९–१३१

अरस्तू का परिचय—प्लैटो से सम्पर्क—सिकंदर का शिक्षक—अरस्तू के दार्शनिक विचार—अरस्तू और प्लैटो की तुलना—अरस्तू और आनन्द—मध्यम मार्ग—सम्यक् कार्य का महत्त्व—अरस्तू का आदर्श व्यक्ति—अरस्तू की शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का संगठन—शिक्षा के विषय—शिक्षा की पद्धति—समाज पर प्रभाव।

१४. अरस्तू के बाद यूनानी शिक्षा १३२–१३९

अरस्तू का अंत—सार्वलौकिक युग—शिक्षा-संस्थायें—भाषा की शिक्षा और भाषण-कला—दार्शनिक विद्यालय—अरस्तू का विद्यालय—विद्यालयों की प्रगति—विश्वविद्यालयों की स्थापना—यूनानी शिक्षा का अंत।

१५. रोमी शिक्षा : सांस्कृतिक भूमिका १४०–१५०

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—एट्रस्कन लोग—लैटिन लोग—रोमी साम्राज्य का विस्तार—सामाजिक जीवन—बेकारी और बीमारी—रोमी समाज के सेवक—ग़रीबों का कानून—बाहरी उन्नति, भीतरी अवनति—रोम की धार्मिक भूमिका—यूनानी प्रभाव।

१६. रोमी-शिक्षा का स्वरूप १५१–१५७

व्यावहारिक बुद्धि—उचित अनुमान—कार्य के प्रति श्रद्धा-भाव—अधिकार और कर्त्तव्य—निश्चित कर्त्तव्यों की शिक्षा—

विषय पृष्ठ

गुणों का विकास—कार्य द्वारा शिक्षा—शिक्षालय और समाज।

१७. रोमी शिक्षा का प्रथम काल १५८–१६४

प्रथम काल का समाज—बारह नियम—पिता पुत्र का सम्बन्ध—आर्थिक व्यवस्था—शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का संगठन—शिक्षा के विषय—शिक्षा की पद्धति—समाज पर प्रभाव।

१८. रोमी शिक्षा का द्वितीय काल १६५–१७०

परिवर्त्तन काल—विचारों और आदर्शों पर प्रभाव—साहित्यिक विकास—भाषा-व्याकरण का अध्ययन—भाषण-कला की शिक्षा—शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का संगठन—शिक्षा के विषय—शिक्षा की पद्धति—समाज पर प्रभाव।

१९. रोमी शिक्षा का तृतीय काल १७१–१७८

साम्राज्य में शिक्षा—साम्राज्य में एकता—उच्च-शिक्षा और सरकारी संरक्षण—ईसाई शिक्षा का बीजारोपण—शिक्षा का संगठन : 'लूडस'—'लूडस' की शिक्षा पद्धति—व्याकरण विद्यालय—व्याकरण विद्यालय के विषय—उच्च-शिक्षा—विश्वविद्यालयों की स्थापना।

२०. रोमी शिक्षा का अंतिम काल १७९–१८४

सामाजिक दशा—साम्राज्य में दुर्व्यवस्था—नैतिक पतन—शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का संगठन—शिक्षा के विषय—शिक्षा की पद्धति—समाज पर प्रभाव।

२१. क्विंटीलियन और उसकी शिक्षा १८५–१८९

प्रारम्भिक जीवन—शिक्षक और लेखक—शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का संगठन—शिक्षा के विषय—शिक्षा की पद्धति—समाज पर प्रभाव।

सहायक पुस्तकों की सूची

1. A student's History of Education. —F. P. Graves.
2. Text-book in the History of Education.—P. Manroe.
3. A History of Western Education. —H. G. Good.
4. The History of Western Education. —W. Boyd.
5. History of Western Philosophy. —B. Russell.
6. The Story of Philosophy. —W. Durant.
7. The Story of Mankind. —H. Van Loon.
8. The Ancient World. —T. R. Glover.
9. A Short History of the World. —H. G. Wells.
10. Glimpses of world History. —Jawahar Lal Nehru.
11. Ancient Times; A History of Early World. —J. H. Breasted.
12. The Theory of Eduetion in Plato's "Republic." —J. E. Adamson.
13. Aristotle on Education. —J. Burnet.
14. Roman Education. —A. S. Wilkins.
15. Roman Education from Cicero to Quintilian. —A. Gwynn.
16. Ancient Education. —J. F. Dobson.
17. Ancient Ideals. —H. O. Taylor.

१८. पाश्चात्य शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास —सरयूप्रसाद चौबे

१९. रोम का इतिहास —ज्वालाप्रसाद

२०. रोम का इतिहास —प्राणनाथ विद्यालंकार

आदिम शिक्षा

सभ्यता और संस्कृति—शिक्षा का इतिहास वास्तव में सांस्कृतिक इतिहास का अंश है। मनुष्य जाति और उसकी संस्कृति के विकास की कहानी में शिक्षा का उल्लेख होना स्वाभाविक है क्योंकि संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका सम्बन्ध केवल अतीत से हो। संस्कृति तो सामाजिक जीवन की शैली है। संस्कृति की व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत मनुष्य जाति की सम्पूर्ण चेष्टायें और उसके सामाजिक संगठन का स्वरूप आ जाता है। इस प्रकार संस्कृति समाज के विकास की कथा है। दूसरे शब्दों में डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त के अनुसार किसी जाति का सामाजिक राजनीतिक विकास उसकी कला, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, राजनीति, सामाजिक संगठन आदि में देखा जा सकता है। इसलिए किसी जनसमुदाय विशेष की संस्कृति का इतिहास एक स्वतंत्र वस्तु नहीं होता, वह उस जाति के जीवन के अन्य पक्षों से सम्बद्ध होता है।

जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि संस्कृति का जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्ध होता है तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करते समय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास की ओर भी ध्यान दें। ऐसा करने से हमें ज्ञात होगा कि सभ्यता के उदयकाल में मनुष्य ने किस प्रकार 'जीवन' को सीखा। दूसरे शब्दों में मनुष्य की शिक्षा की कहानी कहाँ से आरम्भ होती है।

सभ्यता का उदय—मनुष्य का जन्म पृथ्वी पर कब हुआ और उसे वर्तमान स्वरूप किस प्रकार प्राप्त हुआ, आदि प्रश्न ऐसे हैं जिनके द्वारा कल्पना को विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है। और इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य ने इन प्रश्नों पर विचार करते समय अपनी कल्पना से अधिक काम लिया है। इसलिए हम कल्पना-जगत् में न जाकर यथार्थ ही की ओर अधिक ध्यान देंगे और शिक्षा के इतिहास के लिए आवश्यक सामग्री एकत्रित करेंगे।

यह तो सच है कि मनुष्य जितने वर्षों से इस पृथ्वी पर रह रहा है, उनकी गणना असंभव है। मनुष्य की सभ्यता कितनी पुरानी है यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर पुरातत्व-विद्या की सहायता से कुछ ज्ञात होने लगा है। इस सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक तथ्य मनोरंजक प्रतीत होंगे। मिश्र की सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है, इसे सबसे पहले उन्नीसवीं शती के आरम्भ में ज्ञात किया जा सका। मिश्र के शिला-लेखों तथा अन्य प्रकार के लेखों को सन १८२२ ई० में पढ़ा जा सका। धीरे-धीरे अब ज्ञात हुआ है कि प्राचीन मिश्र के इतिहास के पूर्वकालीन अवशेष वर्तमान मिश्र की राजधानी काहिरा से चालीस मील उत्तर-पूर्व के स्थान के उत्तर-पूर्व में करौंव (Karoun) झील के किनारे तथा लगभग दो सौ पैंतालीस मील काहिरा के दक्षिण में स्थित हैं। मिश्र की सभ्यता के ये अवशेष श्रेष्ठ प्रस्तर युग (Neolithic) के हैं। इसी प्रकार मेसोपोटामिया, ईरान आदि देशों के सम्बन्ध में भी बातें हाल ही में ज्ञात हुई हैं। अतः पुरातत्व-विद्या का विकास ज्यों-ज्यों होता जायगा, त्यों-त्यों नवीन बातों का ज्ञान होना स्वाभाविक है।

गुफाओं के चित्र—आदिम सभ्यता के प्रथम सहस्र वर्ष के अंत और दूसरे सहस्र वर्ष के आरम्भ में हमें धार्मिक कथाओं

और मंत्रों का पता चलता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आदिम सभ्यता में मनुष्य के धर्म का स्वरूप वर्तमान स्वरूप से भिन्न था। उस समय वह प्रकृति से 'भयभीत' था। इसलिए प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में उसे किसी देवता का दर्शन होता था। उस देवता के सम्बन्ध में कल्पना की सहायता से उसने कथायें बनाईं और उसे प्रसन्न करने के लिए जादू और टोने की रचना की। आदिम मनुष्य के जादू और टोने के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि ईसा से लगभग बीस हजार वर्ष से दस हजार वर्ष पूर्व काल में दक्षिणी फ्रांस में स्थित गुफाओं की दीवारों पर हिरन के रेखाचित्र मिले हैं। इन रेखा-चित्रों में यह दिखाया गया है कि दौड़ते हुए हरिन को तीर लग गया है। इन चित्रों को खींचते समय आदिम मनुष्य के मन में यह विश्वास था कि ऐसे चित्रों से उसे शिकार में सहायता मिलती है। यदि कोई आदिम मनुष्य शिकार करने के पूर्व इस प्रकार का चित्र बना लेता था, तो वह हरिन का शिकार कर पाता था। शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से इन चित्रों को जब हम देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इन चित्रों के चित्रण में कुशलता और अभ्यास की आवश्यकता है। बिना चित्रण की शिक्षा पाये इस प्रकार का चित्रण संभव नहीं है। इस प्रकार शिक्षा के इतिहास का आरम्भ हम ईसा से लगभग बीस हजार वर्ष पूर्वकाल में पा सकते हैं।

पारिवारिक जीवन—समाज के विकास की दृष्टि से जब हम शिक्षा के आरम्भ पर दृष्टि डालते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि पारिवारिक जीवन का जब आरम्भ हुआ तो उस समय शिक्षा की आवश्यकता हुई क्योंकि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए विशेष प्रकार का कार्य करना पड़ता था। दूसरे शब्दों में जब पारिवारिक दृष्टि से कार्य में विशेषता का महत्त्व स्वीकार किया

गया तो शिक्षा का प्रबन्ध भी आवश्यक हो गया। स्पष्ट है कि बिना शिक्षा के किसी कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त नहीं की जा सकती।

पारिवारिक जीवन के लिए जो विशेष योग्यता प्राप्त हुई उसका उपयोग एक से अधिक परिवारों में सहयोग के द्वारा पड़ा। इस प्रकार जब एक से अधिक परिवार मिल कर कार्य करने लगे तो एक प्रकार का 'समाज' बना और पारिवारिक सम्बन्ध ने विस्तृत होकर सामाजिक सम्बन्ध का रूप धारण कर लिया। इस परिवर्तन का प्रभाव मनुष्य की कार्यप्रणाली पर पड़ा। अब कुछ मनुष्यों ने लकड़ी का काम करना शुरू किया तो कुछ ने शिकार के लिए हथियार बनाया। इस प्रकार जीवन-सम्बन्धी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में और लोग लग गये। लेकिन यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य की सभ्यता का विकास एक शिखर की भाँति नहीं हुआ है। सभ्यता के मार्ग में अनेक खाईयाँ भी आई हैं। कभी-कभी उसे नीचे भी जाना पड़ा है। इस प्रकार आज जब हम सभ्यता का अध्ययन करें तो हमें याद रखना चाहिए कि सभ्यता के इतिहास में यदि उन्नति की ऊँचाइयाँ हैं तो पतन की गहराइयाँ भी हैं। मनुष्य ने ग़लतियाँ की हैं और उन ग़लतियों से शिक्षा भी प्राप्त की है। इसे हम स्पष्ट रूप से इस समय देखेंगे जब प्राचीन सभ्यताओं के चित्र हमारे सामने आएँगे।

आदिम शिक्षा के उद्देश्य—आदिम सभ्यता पर साधारण रीति से विचार करने के बाद आदिम शिक्षा के उद्देश्य पर ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षा के इतिहास की उपयोगिता उसी समय सिद्ध होती है जब हम यह देखने की कोशिश करते हैं कि इतिहास के विभिन्न युगों में शिक्षा के क्या

उद्देश्य थे, क्या विषय थे, शिक्षण-पद्धति क्या थी और शिक्षा का संगठन किस प्रकार किया गया था। वास्तव में शिक्षा का इतिहास शिक्षा के उद्देश्य, विषय, पद्धति और संगठन का इतिहास है। इसलिए आदिम-शिक्षा के स्वरूप में हमें इन चारों बातों को देखना चाहिए।

आदिम-शिक्षा का उद्देश्य आदिम मानव के जीवन से प्रभावित है। आदिम मानव के जीवन में जीवन की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति ही सब कुछ थी। उसके मन में न तो जानेवाले कल की चिंता थी और न आनेवाले कल की। आदिम मानव की दिलचस्पी वर्तमान क्षण में थी। उसके लिए 'आज' का महत्त्व था। कल के लिए वह विकल न था। इसका कारण यह था कि आदिम मानव को खाने के लिए भोजन, रहने के लिए स्थान और शरीर को ढकने के लिए वल्कल की आवश्यकता थी। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति करना आदिम मानव का ध्येय था। अतः आदिम शिक्षा का उद्देश्य था आदिम बालक को इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के योग्य बनाना। शिकार करना, रहने का प्रबन्ध करना और शरीर को ढकने के उपाय आदिम शिक्षा के मुख्य विषय थे। इन विषयों की शिक्षण-पद्धति 'अनुकरण' पर आधारित थी। आदिम बालक अनुकरण से ही सब कुछ सीखता था। आदिम मनुष्य के कार्यों का अनुकरण आदिम बालक करता था।

आदिम-शिक्षा का प्रभाव—आदिम-शिक्षा संगठन का कोई अस्तित्व नहीं था क्योंकि समाज का विकास नहीं हो सका था। इसलिए शिक्षा के लिए किसी प्रकार के शिक्षालय न थे। शिक्षा केवल 'अनुकरण' और 'अनुभव' पर आधारित थी। आदिम बालक अपने विषय में कुछ न सोचता था क्योंकि उस

समय आदिम मानव समाज में किसी के अलग व्यक्तित्व के लिए गुंजाइश न थी। इसलिए शिक्षा में व्यक्तित्व के विकास का भी प्रश्न नहीं था। आदिम मानव में एक प्रकार की 'एकता' थी जो उन्हें एक साथ रखती थी। जहाँ तक आत्मिक विकास का प्रश्न है, उसका स्वरूप भूत-प्रेत से प्रभावित था। भूत प्रेत को खुश रखने के लिए आदिम मनुष्य ने कुछ विधान बना रखे थे और उस विधान की शिक्षा आदिम बालक को दी जाती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिम समाज ने आदिम शिक्षा के स्वरूप को निश्चित किया और आदिम शिक्षा का प्रभाव यह पड़ा कि आदिम मनुष्य जहाँ का तहाँ रहा। सदा वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करना, भूत और भविष्य की चिंता से मुक्त रहना और अपने बारे में कुछ भी न सोचना आदिम शिक्षा के स्पष्ट प्रभाव है। इससे यह सिद्ध होता है कि जैसा समाज होता है उसीके अनुरूप शिक्षा होती है। शिक्षा समाज के विकास में उस समय सहायक होती है जब व्यक्ति अपनी परिस्थितियों पर विचार करके अपने स्थान को समाज में देखें। जिस समाज में व्यक्ति का कोई स्थान नहीं, वहाँ शिक्षा का प्रभाव स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ सकता। यह बात और अधिक स्पष्ट उस समय होगी जब हम सभ्य समाज में शिक्षा को देखेंगे। शिक्षा द्वारा व्यक्ति का विकास और फिर समाज का हित ये दो बातें ऐसी हैं जो शिक्षा के सम्पूर्ण इतिहास में दिखाई पड़ेंगी। कभी समाज को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो कभी व्यक्ति को। इससे मनुष्य ने यह सीखा कि व्यक्ति और समाज में संतुलन (Balance) की आवश्यकता है। यदि हमें इन बातों को ध्यान में रखकर ही शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए।

प्राचीन मिश्र और शिक्षा

मिश्री सभ्यता की देन—आदिम मानव समाज का विकास जब यूरोप के जंगलों में हो रहा था, उस समय नील नदी की घाटी में एक सभ्यता फूल-फल रही थी। कहते हैं कि लगभग छः हजार वर्ष ईसा से पूर्व मिश्र की सभ्यता का निर्माण हुआ था। मिश्र की सभ्यता से हमने कई बातें सीखी हैं। आज के किसान ने प्राचीन मिश्र के किसान से खेती करना सीखा। प्राचीन मिश्र का किसान खेतों की सिंचाई करना जानता था। आज सिंचाई की जितनी भी व्यवस्था है वह प्राचीन मिश्र में सिचाई की व्यवस्था से सम्बन्धित है। प्राचीन मिश्र के लोगों ने ईश्वर के लिए मंदिर बनाये। इन्हीं मंदिरों को हम आधुनिक मंदिर-मसजिद और गिरजाघर का जन्मदाता कह सकते हैं। समय की माप और वर्ष-महीनों का अनुमान सबसे पहले मिश्र में हुआ था। लेकिन मिश्र की इन सब देनों से बढ़कर है लेखन-कला का आविष्कार। मिश्र के लोगों ने सबसे पहले लिखने की कला का विकास किया। इसी लेखन-कला के कारण मिश्र की प्राचीन सभ्यता के सम्बन्ध में आज हम भलीभाँति जानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्र की सभ्यता जो कि अत्यन्त प्राचीन है, उसने हमें खेती, सिंचाई, मंदिरों का निर्माण, समय का अनुमान और लेखन-कला सिखाया। स्पष्ट है कि मिश्र के लोगों ने इन बातों को सीखने के लिए अथक परिश्रम किया होगा और जैसा कि हम जानते हैं आवश्यकता ही आविष्कार की

जननी है। मिश्र के लोगों को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन वस्तुओं का आविष्कार करना पड़ा। इस तथ्य को हम भली-भाँति उस समय समझ सकेंगे जब हम मिश्र की सभ्यता से परिचय प्राप्त करेंगे।

मिश्र की सभ्यता का विकास—शिक्षा और समाज का अटूट सम्बन्ध है। समाज के विकास में शिक्षा कार्य करती है। इसलिए मिश्र की सभ्यता की कहानी में शिक्षा की कहानी भी सम्मिलित है। मिश्र की सभ्यता के विकास में मनुष्य की आदिम आवश्यकता 'भूख' ने बड़ा काम किया है। भोजन की तलाश में पश्चिमी एशिया, मध्य अफ्रीका, और अरब से मनुष्य नील नदी की घाटी में पहुँचा। इन लोगों ने नील नदी की उप-जाऊ घाटी के विषय में सुना था कि वहाँ भोजन की कमी नहीं है। इसलिए ये लोग नील नदी की घाटी में आए। जब ये लोग आए तो इनमें उद्देश्य की एकता के कारण आपस में भी एकता स्थापित हो गई। पश्चिमी एशिया, मध्य अफ्रीका और अरब के लोगों ने एक साथ मिलकर हमला किया और नील नदी की घाटी पर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार विजयी लोगों ने उस एकता को जिसके द्वारा उन्हें अधिकार मिला था, बनाये रखने के लिए एक नई जाति का निर्माण किया जिसे उन लोगों ने 'रेमी' (Remi) नाम दिया। 'रेमी' का अर्थ होता है 'मनुष्य' * । इस प्रकार 'मनुष्यों' ने मिश्र पर अधिकार प्राप्त किया।

---

* From the interior of Africa and from the desert of Arabia and from the western part of Asia people had flocked to Egypt to claim their share of rich

खेती और सिंचाई—'रेमी' जब नील नदी की घाटी में बसे तो उन्होंने देखा कि नील नदी ने लाखों लोगों के भोजन का प्रबंध कर रखा है क्योंकि नील में जब बाढ़ आती है तो वह अपने दोनों तटों पर उपजाऊ मिट्टी की तह जमा देती है। यह मिट्टी खेती के लिए लाभदायक होती है। अतः रेमी जाति के लोगों ने इस उपजाऊ मिट्टी में खेती करना शुरू किया। खेती करते समय उन्होंने देखा कि सिंचाई की आवश्यकता है। बिना सिंचाई की व्यवस्था के भली भाँति खेती नहीं हो सकती। इसलिए इन लोगों ने नील नदी के पानी को खेतों तक पहुँचाने का उपाय ढूँढ़ा। इस प्रकार सर्वप्रथम सिंचाई के साधन का आविष्कार हुआ। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि मिश्र के लोगों ने सिंचाई के साधन को बड़े परिश्रम के बाद ढूँढ़ा। ऐसा करने में उन्हें कितने अनुभवों को काम में लाना पड़ा होगा। इस प्रकार शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से भी मिश्र में सिंचाई के साधन का महत्त्व है। बुनियादी शिक्षा में खेती एक बुनियादी काम है। इसी कार्य को केन्द्र में रख कर बुनियादी अथवा बेसिक शिक्षा का संगठन किया जा सकता है। आदिम शिक्षा की पद्धति में अनुकरण और अनुभव से काम किया जाता था। प्राचीन मिश्र के लोगों ने भी इसी 'अनुकरण' और अनुभव से काम किया और खेती के लिए सिंचाई के साधन को ढूँढ कर भोजन की एक बहुत बड़ी समस्या हल कर ली। अब उन्हें थोड़ी मेहनत में अधिक अन्न मिल जाता था। इस प्रकार उन्हें अवकाश मिला। अवकाश का समय

---

farms. Together these invaders had formed a new race which called itself "Remi" of "the men"......The Story of mankind by H. V. Loon page 22.

जब मिला तो उसके उपयोग की ओर ध्यान गया। समय को व्यर्थ में खोना प्राचीन मिश्र के लोग न जानते थे। इसलिए उन्होंने अवकाश के उपयोग की ओर ध्यान दिया।

अवकाश से विकास—यह कहा जाता है कि सभ्यता और संस्कृति का विकास अवकाश के समय से ही होता है। मनुष्य को जब अवकाश मिलता है तो वह चिंतन करता है। चिंतन करते समय उसका ध्यान केवल वर्तमान की ओर नहीं रहता। वह भविष्य की ओर भी दृष्टि दौड़ाता है। इस प्रकार वह प्रत्येक कार्य के महत्त्व और वास्तविक मूल्य का अनुमान करता है। प्राचीन मिश्र के लोगों को भी जब अवकाश मिला तो वे चिंतन करने लगे। चिंतन करते समय प्राचीन मिश्र के मनुष्य के मस्तिष्क में केवल दैनिक आवश्यकताओं की बातें नहीं आईं, वरन् उसका ध्यान आकाश की ओर भी गया। उसने आकाश में चमकते नक्षत्रों को देखा और पूछा—ये क्या हैं? इन्हें किसने बनाया? इस प्रकार प्राचीन मिश्र का मनुष्य अवकाश पाकर आकाश, नक्षत्र, वर्षा-विद्युत् तथा अन्य प्राकृतिक स्वरूपों की ओर ध्यान देने लगा। इतना ही उसने अपने विषय में भी सोचना आरम्भ किया—मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? और मुझे कहाँ जाना है? इस प्रकार प्राचीन मिश्र ने जीवन के आदि और अंत पर अवकाश के समय विचार किया और ये प्रश्न इतने कठिन थे कि सभी लोगों के लिए यह संभव न था कि वे इनको सुलझा सकें। अतः प्राचीन मिश्र के समाज के कुछ लोगों ने इन समस्याओं का हल ढूँढ़ना शुरू किया। इस प्रकार कुछ लोगों का व्यवसाय ही चिंतन करना हो गया। जो कि कुछ समय बाद प्राचीन मिश्र का 'पुरोहित वर्ग' बन गया। पुरोहित वर्ग ने प्राचीन मिश्र के लोगों के लिए चिंतन कार्य शुरू किया। इस प्रकार पुरोहित की बात पर

लोगों का बड़ा विश्वास हो गया। और जब किसी के लिए कोई सोचनेवाला भी मिल जाता है तो उस मनुष्य को क्या दशा होती है ? उसका दिमाग सोचना बन्द कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसमें अंधविश्वास का विकास होता है। वह नहीं जान पाता कि क्या सही है और क्या ग़लत।

धार्मिक विश्वास——प्राचीन मिश्र के पुरोहित वर्ग ने कहा कि मृत्यु के बाद आत्मा को 'ओसीस' (शक्तिशाली ईश्वर) के सामने जाना पड़ता है। उस समय ओसीस मनुष्य के उन सभी कार्यों की जाँच करता है जो कि उसने अपने जीवन-काल में किया है। यदि उसके कार्य अच्छे हैं तो ओसीस उन्हें पुनः संसार में भेजता है, अन्यथा घोर कष्ट उठाना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मिश्र के लोगों ने जीवन को मृत्यु के बाद के जीवन की तैयारी में बिताना शुरू किया। उनके सभी कार्य 'मृत्यु के बाद जीवन' को ध्यान में रखकर किए जाते थे क्योंकि सभी को संसार में लौटकर आने की इच्छा थी, इसलिए मृत शरीर को सुरक्षित रखने का उपाय ढूँढ़ा गया। इस प्रकार मिश्र में 'ममी' को सुन्दर कब्रों में रखने की चलन हुई। जिस कब्र में 'ममी' रखी जाती थी, वह एक कमरे की भाँति होता था। उस कमरे में भोजन, वस्त्र, धन तथा मनोरंजन के सामान रख दिये जाते थे। ऐसा इसलिए किया जाता था कि मृत्यु के बाद जीवन प्राप्त करने में जितना समय लगता है उस समय में आत्मा को किसी प्रकार का कष्ट न हो। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं कि धन के इच्छुक सभी काल और देश मे हैं। इसलिए धन के इच्छुकों ने कब्रों में रखे हुए धन और अन्य सामग्रियों को चुराना शुरू किया। जब चोरी होने लगी तो लोगों ने कब्र के द्वार इस प्रकार बनाने शुरू किये कि आसानी से उसका न तो पता लगे और न

बिना जाने कोई जा ही सके। इसी सम्बन्ध में यह भी जान लेना आवश्यक है कि प्राचीन मिश्र में कब्रों के ऊपर एक ऊँचा टीला-सा बना देते थे। जो व्यक्ति जितना ही धनी होता था उसका टीला उतना मज़बूत और ऊँचा होता था। प्राचीन मिश्र के राजाओं के टीले सबसे ऊँचे होते थे। इन टीलों को यूनानी लोगों ने 'पिरामिड' कहा क्योंकि प्राचीन मिश्र की भाषा में 'पीर-एमा-एस' का अर्थ ऊँचा होता है। इस प्रकार मिश्र के पिरामिड बने।

शिक्षा का स्वरूप--प्राचीन मिश्र के लोगों के इस धार्मिक विश्वास पर यदि हम ध्यान दें तो स्पष्ट रूप से ज्ञात होगा कि मिश्र के लोगों ने चिंतन कार्य छोड़ दिया था। जो मनुष्य चिंतन नहीं करता वह 'मूर्ख' होता है। 'मूर्खों' द्वारा उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए इन लोगों ने प्रत्येक कार्य के महत्त्व की ओर वांछित और आवश्यक ध्यान नहीं दिया। फलतः उनमें आरम्भशक्ति (Initiative) की कमी हो गई और प्रगति रुक गई। लेकिन फिर भी प्राचीन मिश्र का पतन शीघ्र ही नहीं हुआ। प्राचीन मिश्र की सभ्यता में कुछ ऐसे तत्व भी थे जो मिश्र को अधिक दिनों तक जीवित रख सके। लेकिन शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से मिश्र के सामाजिक जीवन में शिक्षा का जीवन से अलग कोई स्थान न था। शिक्षा व्यावहारिक कार्यों द्वारा होती थी। एक कुशल कारीगर के चेले होते थे जो उससे कार्य को सीखते थे। इस प्रकार अनुभव और अनुकरण अब भी शिक्षा की पद्धति थी और अलग से शिक्षालय की व्यवस्था न थी। पुरोहित-वर्ग के लोग अपने बालकों को स्वयं शिक्षा देते थे। पिता पुत्र का शिक्षक था। पिता के कार्यों का अनुकरण करके ही पुत्र सीखता था।

शिक्षा का उद्देश्य—प्राचीन मिश्र की शिक्षा को स्पष्ट रूप से देखने के लिए मिश्र के समाज से परिचय प्राप्त किया जा चुका है। प्राचीन मिश्र की जो सामाजिक दशा थी उसे ध्यान में रखते हुए शिक्षा के उद्देश्य, विषय, पद्धति और संगठन के स्वरूप की भी कल्पना की जा सकती है। प्राचीन मिश्र में शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करते समय हमें ध्यान में रखना चाहिए कि मिश्र निवासियों का ध्यान केवल वर्तमान की ही ओर न था वरन् उनकी दृष्टि भविष्य को भी देखने का प्रयास करती थी। साथ ही उन्हें चिंतन के लिए अवकाश भी था। इन दो बातों का प्रभाव प्राचीन मिश्र की शिक्षा पर पड़ा है। अतः मिश्र के बालकों में यह क्षमता उत्पन्न की जाती थी कि वे तात्कालिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति करनेवाली शिक्षा को न ग्रहण करें वरन् उन बातों को भी सीखें जिनसे उनका भविष्य बन सकता है। भविष्य को सुखमय बनाने के लिए भलाई करना आवश्यक था। इसलिए प्रत्येक बालक को नैतिक शिक्षा भी दी जाती थी। इस प्रकार प्राचीन मिश्र में शिक्षा का उद्देश्य बालक को मृत्यु के बाद जीवन के योग्य बनाना था।

शिक्षा के विषय—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा के विषय का चुनाव भी करना होता है। जैसा कि हम जानते हैं प्राचीन मिश्र के लोगों का प्रधान कार्य खेती करना था। इसलिए बालकों को कृषि की शिक्षा दी जाती थी। अवकाश के समय का उपयोग करने के लिए चित्रकला, दस्तकारी तथा लेखन-कला की शिक्षा दी जाती थी। मिश्र के लोग 'मृत्यु के बाद जीवन' को वर्तमान जीवन से अधिक महत्त्व देते थे। इसलिए वर्तमान जीवन 'मृत्यु के बाद जीवन' को सुखमय बनाने की तैयारी में व्यतीत होता था। इसका शिक्षा के पाठ्यक्रम पर भी प्रभाव पड़ा। फलतः बालकों को अच्छे कार्य करने की शिक्षा दी जाती थी

और जो धार्मिक शिक्षा उन्हें मिलती थी उससे उनमें 'आरम्भ-शक्ति' का विकास नहीं हो पाता था। इस प्रकार शिक्षा के विषय कृषि, चित्रकला, दस्तकारी, और धर्म माने गये।

शिक्षा की पद्धति और संगठन—शिक्षा की पद्धति व्यावहारिक थी। कर के सीखने की पद्धति ही प्रचलित थी। दूसरे शब्दों में अनुभव और अनुकरण पर ही शिक्षा की पद्धति आधारित थी। जहाँ तक संगठन का प्रश्न है शिक्षक के पास शिक्षार्थी एकत्र होकर शिक्षा पाते थे। शिक्षक का घर ही शिक्षालय था। प्राचीन भारत में जिस प्रकार शिक्षा का संगठन था उसी से मिलता-जुलता संगठन मिश्र में भी था। लेकिन वास्तव में अभी ऐसे ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं जिनके आधार पर मिश्र की शिक्षा के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कहा जा सके। अतः जो कुछ भी ज्ञात है वह प्राचीन मिश्र के समाज के आधार पर ही है। इसका कारण यह है कि समाज शिक्षा का स्वरूप निर्धारित करता है, और समाज के विश्वास का प्रभाव शिक्षा के उद्देश्य पर पड़ता है। आज हम लोकतंत्र (Democracy) के युग में रहते है। इसलिए हमारी शिक्षा भी लोकतंत्र के अनुरूप ही है।

आदिम शिक्षा के बाद प्राचीन मिश्र में शिक्षा से परिचय प्राप्त करते समय हम ऐतिहासिक क्रम और विकास का निर्वाह कर सके हैं। मिश्र की सभ्यता का यूनानी और रूमी सभ्यता पर प्रभाव पड़ा है। इसी दृष्टि से हम आगे सभ्यता के दूसरे स्थल दजला और फ़रात नदियों की घाटी का अध्ययन करेंगे। दजला और फ़रात की घाटी में मेसोपोटामिया का विकास हुआ। मेसोपोटामिया का मिश्र से सम्बन्ध था। इस प्रकार पश्चिमी शिक्षा के इतिहास के अध्ययन की तीसरी कड़ी मेसोपोटामिया की सभ्यता से परिचय प्राप्त करना है।

मेसोपोटामिया

दजला और फरात का प्रदेश—मिश्र की सभ्यता का प्रभाव मेसोपोटामिया पर पड़ा है। मेसोपोटामिया उस प्रदेश का नाम है जो दजला और फरात (Euphrates & Tigris) नदियों के बीच में है। इस प्रदेश का नाम मेसोपोटामिया यूनान के लोगों ने रखा था। क्योंकि यूनानी भाषा में मेसोपोटामिया उस प्रदेश को कहते हैं जो नदियों के बीच में हो।

जिस प्रकार मिश्र की सभ्यता में नील नदी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार मेसोपोटामिया में दजला और फरात नदियों का भी है। ये नदियाँ उत्तर में अर्मेनिया के पहाड़ों में से निकल कर दक्षिणी मैदान में बहती हुई फारस की खाड़ी मे गिरती हैं। इन नदियों ने पश्चिमी एशिया की ऊसर भूमि को उपजाऊ बना दिया। यदि ये नदियाँ न होती तो लोग इस प्रदेश में आकर न बसते। नील नदी की भाँति इन नदियों ने भी जीवन की सुविधायें प्रस्तुत कीं।

मेसोपोटामिया प्रदेश मे जब जीवन की सुविधा सुलभ हो गई तो उत्तरी पहाड़ी प्रदेश के और दक्षिणी मरुभूमि के लोगों ने इससे लाभ उठाना चाहा। यह तो संभव था नहीं कि दोनों मिलकर रहें। इसलिए उत्तरी और दक्षिणी लोगों में मेसोपोटा-मिया के लिए निरन्तर युद्ध होते रहते।

सुमेरी लोग—उत्तरी पहाड़ी प्रदेश के जो लोग मेसो-पोटामिया में आए, वे सुमेरी (Sumerians) कहलाते

थे। सुमेरी लोग श्वेत रंग के थे। पहाड़ों में रहने के कारण इनका जीवन भी पहाड़ी परिस्थितियों से प्रभावित था। जब ये मेसोपोटामिया के मैदान में आए तो एक उन्हें नवीन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। अब तक इन्हें पहाड़ी जीवन का अभ्यास था। इसलिए मैदान में आकर सुमेरी लोगों ने सामंजस्य उपस्थित करना चाहा।

सुमेरी लोग धार्मिक विचारों के थे। पहाड़ों पर सुमेरी अपने देवताओं की पूजा करते थे। अतः जब वे मैदान में आए तो यह समस्या सामने आई कि वे देवताओं की पूजा समतल भूमि पर कैसे करें। इस समस्या के हल के लिए उन्होंने मैदान में एक ऊँचा टीला बनाया। लेकिन उस टीले के ऊपर जाँय कैसे? इसलिए उन्होंने टीले के चारों ओर चक्करदार रास्ता बनाया। सीढ़ी बनाना सुमेरी लोग नहीं जानते थे। इसलिए सुमेरी लोगों ने चढ़ावदार टीला बनाया। इस प्रकार वे अपने देवताओं की पूजा करने में सफल हुए। पूजा के लिए बनाये गये इन टीलों को बाद में बाबुल की मीनार' (Towers of Babel) का नाम उस समय दिया गया जब कि यहूदी लोग इस प्रदेश में आए।

अक्कादी लोग—सुमेरी लोग मेसोपोटामिया के प्रदेश में ईसा से लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व आए थे। लेकिन जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि मेसोपोटामिया प्रदेश पर अन्य लोगों द्वारा हमले भी होते रहते थे। अतः कुछ समय के पश्चात् सुमेरी लोगों पर एक दूसरी जाति के लोगों ने हमला किया। इन्हें अक्कादी (Akkadians) कहते थे। अक्कादी अरब की मरुभूमि प्रदेश के निवासी थे। अक्कादियों की भी अपना एक इतिहास है। कहते हैं कि अरब प्रदेश में बसनेवाली अनेक जातियों में से एक अक्कादी भी थे। अक्कादी लोगों को कालान्तर में अरब

प्रदेश की एक दूसरी जाति अमरोती (Amorites) लोगों ने जीता। इस जाति का एक प्रसिद्ध राजा हम्मुरबी (Hammurabi) था। उसने बाबुल नामक नगर में एक सुन्दर महल बनवाया। इस महल की भव्यता देखकर उस काल की कल्पना की जा सकती थी।

हम्मुरबी की देन—संसार की संस्कृति को हम्मुरबी के शासन से बड़ी सहायता मिली। प्राचीन इतिहास में हम्मुरबी अंधकार के समुद्र में प्रकाश-स्तम्भ की भाँति है। हम्मुरबी ने केवल महल ही नहीं बनवाये, वरन् उसने समाज के जीवन को भी एक निश्चित गति दी। उसने शासन-सम्बन्धी नियमों की रचना की। उन नियमों के अनुसार बाबुल (Babylon) का शासन भली-भाँति होता था। इस प्रकार हम्मुरबी ने बाबुल की जनता को नियमानुकूल कार्य करने की शिक्षा दी।

लेकिन इतिहास-चक्र चलता रहता है। अक्कादियों के बाद एक दूसरी जाति के लोग आए। इन्हें हित्ती (Hittites) कहते हैं। हित्तियों ने बाबुल नगर को नष्ट कर डाला। वे जो कुछ ले जा सके ले गये और जो नहीं ले जा सकते उसे नष्ट कर दिया। इस प्रकार हम्मुरबी ने जिस संस्कृति का निर्माण किया था, उस पर एक बर्बर प्रहार हुआ।

असीरी लोग—हित्तियों के बाद मेसोपोटामिया के उर्वर प्रदेश में उस जाति के लोग आए जो असुर (Ashur) देवता की पूजा करते थे। ये अपने को असीरी कहते थे। असीरियों (Assyrian) ने मेसोपोटामिया के प्रदेश में पुनः सभ्यता और संस्कृति का प्रसार किया। इन लोगों ने अपने शासन का केन्द्र निनवे (Nineveh) नगर को बनाया।

असीरी लोग बड़े प्रतापी थे। इन लोगों ने अपने साम्राज्य का विस्तार भी किया। पश्चिमी एशिया और मिश्र को इन्होंने जीता और कई जातियों के लोगों से कर वसूल किया। इस प्रकार असीरियों की प्रभुता ईसा से लगभग सात सौ वर्ष तक स्थापित थी।

काल्दी लोग—जिस प्रकार सभी जातियों का उत्थान और पतन होता है, उसी प्रकार असीरियों के पतन के भी दिन आए। असीरियों पर काल्दी (Chaldeans) लोगों ने अधिकार किया। इन लोगों ने अपनी राजधानी बाबुल नगर को बनाया। इस समय बाबुल की बड़ी उन्नति हुई और वह उस समय के संसार का सर्वश्रेष्ठ नगर बन गया।

शिक्षा और संस्कृति—काल्दी लोगों ने शिक्षा और संस्कृति के विकास और प्रसार की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। इनके एक राजा नेबुकनेजर (Nebuchadnezzar) ने विज्ञान, गणित और नक्षत्र-विद्या के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया। कहते हैं कि विज्ञान, गणित और नक्षत्र-विद्या (Astronomy) के मूल-सिद्धान्तों की खोज इसी काल में हुई थी। इस प्रकार सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा की दृष्टि से काल्दी लोगों का काल महत्त्वपूर्ण है।

मेसोपोटामिया के प्रदेश में इतिहास बनता था। अतः बार-बार नयी जाति के लोग आए और चले गये। काल्दी लोगों के बाद ईरान की ओर से कुछ लोग आए और उन्होंने मेसोपोटामिया के प्रदेश पर अधिकार जमाया। इनके बाद यूनान के सिकन्दर महान् की प्रभुता स्थापित हुई। यूनानियों के बाद रोम के लोग, रोम के लोगों के बाद तुर्की के लोग आए।

इस प्रकार मेसोपोटामिया के प्रदेश में अनेक जातियों का इतिहास दबा पड़ा है। यूनानी शिक्षा के इतिहास को भली भाँति समझने के लिए हम प्राचीन इतिहास का क्रम से परिचय प्राप्त कर रहे हैं। इस परिचय के आधार पर ही हम यूनान की सांस्कृतिक भूमिका को समझ पायेंगे।

यहूदी और उनकी शिक्षा

यहूदी जाति—मेसोपोटामिया में बसने वाली जातियों की संस्कृति और सभ्यता के बाद पश्चिमी सभ्यता के क्रम में यहूदी जाति का उल्लेख होता है। यहूदी जाति की कहानी एक ऐसी जाति की कहानी है जिसने बड़ी विपत्तियों का सामना किया है और जिसने शायद इन विपत्तियों के कारण ही अधिक उन्नति भी की है। विपत्तियों ने यहूदियों को दृढ़ता प्रदान किया और वे निश्चित रूप से उन्नति कर सके। इस उन्नति के लिए उन्होंने शिक्षा को प्रमुख साधन बनाया। यहूदियों के पहले की जातियों में शिक्षा का वह महत्त्व नहीं था जो यहूदियों ने शिक्षा को दिया। इसका कारण स्पष्ट हो जाता है जब हम यहूदी जाति के विकास पर ध्यान देते हैं।

लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व फरात नदी के मुहाने पर उर (UR) नामक एक स्थान था। इस स्थान में एक चरवाहा जाति बसती थी। कुछ दिनों के बाद इस चरवाहा जाति के लोग चारागाहों की तलाश में घूमने लगे। घूमते-घूमते ये बाबुल राज्य में आए। बाबुल के राजा ने इन्हें मार भगाया और ये बेचारे अब पश्चिम की ओर चले।

मिश्र में यहूदी—जिस चरवाहा जाति का उल्लेख ऊपर हुआ है, वह यहूदी जाति है। यहूदी जाति के लोग बाबुल से चल कर मिश्र में आये। मिश्र में इन्हें रहने की सुविधा मिली। यहूदी लोग मिश्र में लगभग पाँच शतियों तक बड़े सुख

से रहे। इसके बाद हिक्सास (Hyksos) जाति का हमला मिश्र पर हुआ। उस हमले के समय यहूदियों ने मिश्र के लोगों के विरुद्ध हिक्सास लोगों का साथ दिया। जब हिक्सास लोगों का अधिकार मिश्र पर हो गया तो उन लोगों ने यहूदियों को और भी सुविधायें दे दीं। उन्हें और भी चरागाह मिल गये। इस प्रकार यहूदी लोग हिक्सास राज्य में सुखपूर्वक रहने लगे।

यहूदियों पर विपत्ति—कुछ समय बाद मिश्र के लोग संगठित हुए और उन्होंने मिश्र की स्वतंत्रता का युद्ध छेड़ दिया। वर्षों तक यह युद्ध चलता रहा और अंत में विजय हुई मिश्र के लोगों की। जब मिश्र पर मिश्रियों का अधिकार हो गया तो उन्होंने यहूदियों से बदला लिया। उस समय मिश्र में जितने यहूदी रहते थे उन सब को गुलाम घोषित कर दिया गया और उन पर सख्तियाँ भी होने लगीं। मिश्र के प्रसिद्ध पिरामिड इन यहूदी गुलामों के खून और पसीने से बनाये गये। इतना ही नहीं यहूदियों पर बड़ा कड़ा पहरा रहता था और उन्हें मिश्र से बाहर जाने की आज्ञा न थी। इस प्रकार मिश्र में यहूदियों पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा।

मोजेज—लेकिन जब विपत्ति आती है तो उसे झेलने का बल भी आता है। यहूदियों के बीच एक ऐसा नवयुवक था जो बड़ा ही बुद्धिमान् था। मरुस्थल के शांत वातावरण में वह पला था। उसे सादा जीवन और उच्च विचार प्रिय थे। इस होनहार युवक का नाम मोजेज (Moses) था। मोजेज ने यहूदी जाति के लोगों को मिश्रियों की गुलामी से निकालने की कोशिश की। लेकिन जब मोजेज के मनमें यह बात आई तो उसने यह भी सोचा कि यहूदी जाति की उन्नति कैसे होगी। उन्नति

के लिए मोजेज ने अपने पूर्वजों के सरल जीवन को ध्यान में रखा।

किसी प्रकार मोज़ेज यहूदी जाति के लोगों को मिश्र के बाहर निकाल लाया। मिश्र की सेना ने उनका पीछा किया। लेकिन वे लोग पकड़े न जा सके। इस प्रकार बच कर मोज़ेज और उसके साथ के यहूदी उस मैदान में आए जो कि सिनाइ पहाड़ के निकट था। इस मैदान में आकर यहूदी बसे। उस समय मोज़ेज ने यहूदी लोगों को धर्म की बातें बताईं। उसने आकाश के उस देवता (ईश्वर) को बताया जिसकी कृपा से वर्षा होती थी और जो चरागाहों को हरा-भरा रखता था। उस समय पश्चिमी एशिया में अनेक देवता प्रसिद्ध थे। उन देवताओं में एक देवता जेहोवा (Jehovah) था। यहूदी लोगों को मोज़ेज ने ऐसी शिक्षा दी कि वे जेहोवा को अपनी जाति का प्रधान देवता मानने लगे। इस प्रकार मोज़ेज की प्रेरणा से यहूदियों ने सर्वप्रथम एक देवता—एक ईश्वर को स्वीकार किया।

मोजेज की शिक्षा—मोज़ेज की शिक्षा के परिणाम स्वरूप यहूदी जाति का उद्धार हुआ था। मोजेज ने सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श यहूदियों के सामने रखा था। साथ ही मोजेज ने दैनिक जीवन में नैतिकता की ओर भी ध्यान दिया। उसने भोजन और रहन-सहन की प्रत्येक वस्तु के विषय में एक निश्चित आदेश दिया। मोजेज ने यहूदियों को एक ईश्वर की कल्पना प्रदान की। पश्चिमी सभ्यता के इतिहास में संभवतः सर्वप्रथम यहूदियों ने ही एक ईश्वर को स्वीकार किया। इस एक ईश्वर के विश्वास के फलस्वरूप यहूदी जाति में दृढ़ संगठन और भ्रातृभाव उत्पन्न हुआ और उन्होंने सहयोग द्वारा विशेष उन्नति की। उनकी उन्नति में शिक्षा का प्रमुख स्थान था। इसलिए हमें

उस शिक्षा के स्वरूप से परिचित होना चाहिए जो उनकी उन्नति में सहायक हुई।

शिक्षा का स्वरूप—मोजेज के प्रभाव के कारण यहूदियों की शिक्षा में नैतिकता और धर्म की प्रधानता थी। इसका कारण उनका वह विश्वास था जो सम्पूर्ण संसार को जहोवा की दैवी-शक्ति की अभिव्यक्ति मानता था। यहूदियों को यह दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य की सभी शक्तियाँ और उसके जीवन के सभी नियमादि ईश्वर-प्रदत्त हैं। अतः उनकी शिक्षा के दर्शन में धर्म और नैतिकता की प्रधानता स्वाभाविक है।

शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा के दर्शन में धर्म और नैतिकता की प्रधानता के कारण यहूदियों की शिक्षा के उद्देश्य भी धर्म और नैतिकता पर आधारित थे। अतः यहूदियों की प्रारम्भिक शिक्षा के विषयों में ऐसी बातों का समावेश किया गया जो धार्मिक भावना का विकास करते हों और ईश्वर का भय उत्पन्न करते हों। शिक्षा में धर्म की प्रधानता के कारण बालकों को धार्मिक पूजा सम्बन्धी आचारों की शिक्षा भी ग्रहण करनी पड़ती थी। यह स्वाभाविक भी था।

शिक्षा में व्यावहारिकता—लेकिन यहूदी शिक्षा में व्यावहारिकता का भी स्थान था क्योंकि मोजेज ने जीवन को उपयोगी बनाने पर बल दिया था। फलतः यहूदी शिक्षा में सीखने के साथ कार्य करने का भी महत्व था। यहूदी उस शिक्षा का कोई मूल्य नहीं मानते थे जो जीवन को उपयोगी बनाने में सहायक न हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि नवीन-शिक्षा का वह सिद्धांत जो करके सीखने (Learning by Doing) पर जोर देता है, उसका बीज यहूदियों की शिक्षा में मिलता है।

यहूदियों के यहाँ एक नियम है जिसे वे मिशना (Mishnah) कहते हैं। इस नियम के अनुसार केवल शिक्षा ग्रहण करना ही आवश्यक नहीं है, वरन् कार्य करने की क्षमता भी प्राप्त करना आवश्यक है।* इस प्रकार यहूदी शिक्षा में जीवन को उपयोगी बनाने के लिए ऐसी बातों को भी सीखना आवश्यक था, जो जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों।

माता-पिता द्वारा शिक्षा—यहूदियों की शिक्षा में जीवन की ओर पूरा ध्यान दिया जाता था। अतः यहूदी बालक की शिक्षा उसके घर पर ही आरम्भ हो जाती थी। यहूदी माता-पिता अपने बालकों को उन बातों की शिक्षा देते थे जिनकी कि दैनिक जीवन में आवश्यकता थी। और यह तो हम जानते ही हैं कि यहूदी जाति को आरम्भ में जीवन की सुविधा प्राप्त करने के लिए एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को जाना पड़ता था। इसलिए शिक्षा का प्रबन्ध एक निश्चित रूप से नहीं हो सकता था। अतः इस कमी को पूरा करने के लिए बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा का उत्तरदायित्व उनके माता-पिता पर डाल दिया गया। माता-पिता अपने बालकों की शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक शिक्षा की दृष्टि से व्यायाम, नृत्य, संगीत, लिखना-पढ़ना, दया, उपकार, अनुशासन और अन्य नैतिक बातों की शिक्षा देते थे। माता-पिता द्वारा जो शिक्षा दी जाती थी, उसे बालक सरलता से ग्रहण कर लेता था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक भाषण में कहा था कि शिक्षा को माँ के दूध के समान होना चाहिए। दूध से बच्चे का पेट तो भरता ही है, साथ ही उसे माँ का स्नेह भी मिलता है।

---

* "Not learning but doing, is the chief thing". according to their (Jews) oral Law Known as Mishnah ....F. P. Graves.

इसी प्रकार हम देखते हैं कि यहूदियों में माता-पिता द्वारा शिक्षा देने की जो व्यवस्था थी, वह बालकों की दृष्टि से उपयोगी थी क्योंकि उन्हें शिक्षा के साथ ही माता-पिता की देखभाल और स्नेह भी मिलता था। स्नेहहीन शिक्षा सूखे फल के समान है। अत: उसका कोई उपयोग नहीं है। यहूदियों ने इस सत्य को बहुत पहले पाया और उन्होंने शिक्षा को स्नेहहीन होने से बचाया। यहूदी पिता अपने पुत्र को उन बातों की शिक्षा देता जो कि आगामी जीवन के लिए आवश्यक थीं और यहूदी माता अपनी पुत्री को गृहस्थ जीवन के योग्य बनाती।

अनिवार्य शिक्षा—लेकिन जब मोजेज के परिश्रम से यहूदियों के दिन लौटे और वे सुख से रहने लगे तो उन्होंने अपनी जाति की उन्नति के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाया। इस प्रकार पश्चिम में अनिवार्य शिक्षा का आरम्भ यहूदियों ने किया क्योंकि उन्होंने विपत्तियों को झेल कर यह सीखा था कि यदि उन्नति करना है और जाति को शक्तिशाली बनाना है तो निरक्षरता को दूर करना होगा और शिक्षा को अनिवार्य बनाना होगा।

शिक्षा को सार्वजनिक और अनिवार्य बनाने के लिए यहूदियों ने शिक्षालय खोले। उस समय शिक्षालय के लिए अलग से कोई भवन न होता था, वरन् जो उनके उपासना-गृह (Synagogue) थे, उन्हीं में शिक्षालय की व्यवस्था की गई। यह एक उल्लेखनीय बात है कि भारत में भी प्राचीन शिक्षा का आरम्भ धार्मिक वातावरण और स्थान में हुआ था। संभवत: इसका कारण यह है कि आरम्भ में मनुष्य के जीवन में धर्म की प्रधानता थी। उसके सभी कार्य धार्मिक दृष्टिकोण से होते थे। इसलिए यहूदियों के लिए भी यह स्वाभाविक था कि वे अपने शिक्षालय उपासना-गृहों में खोलते।

जब यहूदी जाति के लोग फिलस्तीन के येरुसलम (शांति के नगर) में आकर बसे तो उस समय शिक्षा की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया। इतिहास से यह ज्ञात होता है कि यहूदियों के एक पादरी जोशुआ बेन गमाला (Joshua ben Gamala) ने ईसा के ६४ वर्ष बाद यह आज्ञा दी थी कि प्रत्येक उपासना गृह में शिक्षालय खोले जाँय। इसी प्रकार यहूदियों के पूर्ण प्रदेश में शिक्षा को सुलभ करने की व्यवस्था साइमन बेन शेताक (Simon ben Shetach) ने किया। इसी शिक्षा के फलस्वरूप यहूदी जाति की सभ्यता और संस्कृति का विकास और प्रसार हो सका और आज भी यहूदी जाति में अनेक विद्वान् मिलते हैं।

शिक्षा के विषय——यहूदी शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षा के विषय भी थे। जब छः वर्ष का यहूदी बालक शिक्षालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आता था तो उसे प्रार्थना के गीत, और धार्मिक कथाओं की शिक्षा दी जाती थी। उन्हें सांस्कृतिक जीवन के योग्य बनाने के लिए उत्सवों और त्योहारों के बारे में बताया जाता था। इस प्रकार जब यहूदी कोई उत्सव मनाते थे तो उन्हें उसका महत्त्व भी ज्ञात होता था।

यहूदियों ने उन्नति के लिए उत्तरदायित्त्व की ओर अधिक ध्यान दिया। प्रत्येक यहूदी को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो कि उसका उत्तरदायित्व अपने देश और जाति के प्रति भी है। इस उत्तरदायित्व की भावना का विकास प्रारम्भिक शिक्षा के समय से ही किया जाता था। विद्यार्थियों को कर्त्तव्य का ज्ञान इस प्रकार कराया जाता था कि वे बिना किसी कठिनाई के अपने उत्तर-दायित्व को समझ सकते थे।

शिक्षण-पद्धति—यहूदियों ने शिक्षा को सफल बनाने की दृष्टि से शिक्षण-पद्धति की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने

बालक की रुचि का ध्यान रखते हुए पद्धति का निर्वाचन किया। अतः यहूदी शिक्षा में रटने पर जोर नहीं दिया जाता था। बालक की बुद्धि के अनुसार इस प्रकार शिक्षा दी जाती थी कि उसकी समझ में भली भाँति आ जाता था और उसकी स्मृति भी उसकी शिक्षा में सहायक होती थी। दूसरे शब्दों में शिक्षा की ऐसी पद्धति यहूदियों ने रखी कि बालकों की स्मृति का स्वाभाविक रूप से विकास होता था।

यहूदियों की शिक्षा पद्धति में उत्तरदायित्व की भावना के कारण अनुशासन का प्रश्न उपस्थित होता है। बिना अनुशासन का पालन किये उत्तरदायित्व का विकास नहीं होता। इसलिए विद्यार्थियों को अनुशासन का पालन करना पड़ता था। जो विद्यार्थी अनुशासन भंग करता था, उसे दंड भी मिलता था। लेकिन दंड में निर्दयता नहीं आने दिया जाती थी और बाद में तो दंड को और भी कम कर दिया गया और उसके स्थान पर पुरस्कारों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता था। इस प्रकार यहूदी बालक की शिक्षा नियमित रूप से होती थी। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यहूदियों ने सह-शिक्षा का प्रबंध नहीं किया था। केवल बालक ही शिक्षालय में शिक्षा के लिए जाते थे और बालिका घर पर माता से शिक्षा प्राप्त करती थी। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है बालिकाओं की शिक्षा में गृह-विज्ञान की बातें अधिक होती थीं। जहाँ तक धार्मिक शिक्षा का प्रश्न है, वह प्रायः बालकों के समान ही होती थी।

यहूदियों की उच्च-शिक्षा—यहूदियों की शिक्षा में विचार की संभावना थी। वे शिक्षा और ज्ञान को सीमित नहीं मानते थे। इसलिए वे अधिक अध्ययन की ओर ध्यान देते थे। इसके लिए यहूदियों ने परिषदों (Academies) की स्थापना की थी।

इन परिषदों का संचालन विद्वान् यहूदियों द्वारा होता था। यहूदी युवकों को परिषद् में अध्ययन के लिए पूर्ण सुविधा थी। न तो उन्हें फीस देनी पड़ती थी और न किसी प्रकार का बंधन था। वाद-विवाद और विचारों के आदान-प्रदान की पद्धति का अनुसरण किया जाता था। गुरु के प्रति आवश्यक श्रद्धा का भाव रखते हुए विद्यार्थी गुरु के विचारों की आलोचना कर सकता था। इस प्रकार यहूदी युवकों की विचार-शक्ति का विकास होता था।

उच्च-शिक्षा के विषय का उल्लेख भी आवश्यक है। यहूदियों के जीवन में धर्म की प्रधानता होने के कारण उच्च-शिक्षा में भी धर्म की प्रधानता थी। लेकिन वह धर्म अंध-भक्ति का विकास न करे इसके लिए गणित और खगोल विद्या का अध्ययन किया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्ध का अध्ययन भी उस दृष्टि से किया जाता था जो ईश्वरीय शक्ति का द्योतक था। इस प्रकार यहूदियों की उच्च-शिक्षा धार्मिक केन्द्र से आरम्भ होकर जीवन के उन क्षेत्रों में प्रवेश करती थी जो विचार-शक्ति का विकास करती थी, अंध-विश्वास का नाश करती थी और विश्व की ईश्वरीय शक्ति का बोध करती थी।

समाज पर प्रभाव—उस काल के समाज पर यहूदी शिक्षा का प्रभाव क्या पड़ा? यदि इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ना हो तो हमें यहूदियों के धार्मिक विश्वास को देखना चाहिए। पश्चिमी सभ्यता में सर्वप्रथम एक ईश्वर की कल्पना यहूदियों ने की और ईश्वर को जीवन के सभी कार्यों से सम्बन्धित मानते थे। इसलिए उन्होंने आचार-विचार और जीवन प्रणाली में कर्त्तव्य-पालन और उत्तरदायित्व तथा अन्य नैतिक गुणों की ओर ध्यान

दिया। इस प्रकार विश्व की सभ्यता ने प्रगति का एक बड़ा कदम उठाया। यहूदियों की नैतिकता का प्रभाव आनेवाले युग पर पड़ा और आज भी वह प्रभाव किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। यहूदियों की सामाजिक एकता तथा व्यक्ति से बढ़कर समाज की भावना आज भी एक आदर्श है। व्यक्ति और समाज को लेकर अनेक प्रश्न उपस्थित हुए हैं। इन्हीं प्रश्नों को मनुष्य युग-युगों से सुलझाता आया है, और आज भी वह समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

यूनानी-शिक्षा : सांस्कृतिक भूमिका

यूनानी शिक्षा के स्वरूप आदि विषयों के अध्ययन के पूर्व यूनान और यूनानियों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। क्योंकि यदि हम यूनान और यूनानियों को नहीं जानते तो उनकी शिक्षा का भी अध्ययन कठिन होगा।

हेलेनी लोग—यूनानी कौन थे, कहाँ से आये थे, इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—ईसा के कई शताब्दियों पूर्व जब कि मिश्र के पिरामिड हजार वर्ष पुराने हो चुके थे और जब बाबुल के बादशाह हम्मुरबी का राज्य खत्म हो गया था, उस समय मध्य यूरोप में डैन्यूब नदी के किनारे एक चरवाहा जाति थी। उस जाति के लोग चारागाह की तलाश में निकल पड़े और घूमते-घूमते वे उस प्रदेश में आये जिसे आजकल यूनान कहते हैं।

ये चरवाहे अपने को हेलेनी (Hellenes) कहते थे क्योंकि ये अपने को उस हेलेन की संतान मानते थे जो ड्यूसालियन (Deucalion) और पिरा (Pyrrha) का बेटा था। ड्यूसालियन और पिरा के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि जब पश्चिमी प्रदेश में जलप्लावन हुआ था तो ये ही दो व्यक्ति बच गये थे। जलप्लावन क्यों हुआ था, इसका कारण यह बताया जाता है कि उस समय के लोग बड़े धोखेबाज और चरित्रहीन हो गये थे। अतः उनका नाश करने के लिए जल-प्लावन हुआ था।

इस प्रकार यूनानी अपने को हेलेनी क्यों कहते थे यह स्पष्ट हो जाता है। हेलेनी कहलाने में उन्हें यह गौरव प्राप्त था कि

उनके पूर्वज उस समय नैतिक थे जब कि संसार नैतिक-पतन के गढ़े में था। लेकिन इस गौरव का गान करने वाले यूनानी भी आरम्भ में जंगली ही कहे जा सकते हैं क्योंकि उनका रहन-सहन और कार्य सभ्यता से अछूता था। जो लोग अपने शत्रुओं को खूँख्वार कुत्तों के सामने फेंक दें और जो सुअर की तरह गंदे स्थानों में रहते हों, उन्हें जंगली न कहा जाय तो और क्या कहा जाय ?

हेलेनियों का यूनान में प्रवेश—हेलेनी लोग जब यूनान में आये तो वहाँ के निवासियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। यूनान के निवासियों की स्त्रियों का हरण करना हेलेनी लोगों के लिए सामान्य बात थी। इस प्रकार सम्पूर्ण यूनान में हेलेनी लोग फैल गये और बस गये। हाँ, इन लोगों का साहस उन पहाड़ी स्थानों पर अधिकार करने का नहीं हुआ जिन्हें इनके पूर्व एजियन प्रदेश के लोगों ने बनाया था। एजियनी लोग अधिक सभ्य थे और उनके पास युद्ध के लिए तलवार और भाले भी थे। इसलिए हेलेनी एजियनी लोगों से लड़ने का साहस नहीं करते थे। लेकिन वे वीर और साहसी एजियनी लोगों से मिलना चाहते थे। अतः धीरे धीरे हेलेनी और येजियनी में सम्पर्क स्थापित हुआ। इस सम्पर्क के फलस्वरूप हेलेनी लोगों ने एशियनों से युद्ध के हथियारों को बनाना सीखा। हेलेनी लोगों ने समुद्र में बड़ी नावों को चलाना और वे सभी बातें येजियनी लोगों से सीख लिया जो उन्नति में सहायक होती थीं। जब हेलेनियों ने सभी बातों को सीख लिया तो उन्होंने एजियनों पर हमला कर दिया और उन्हें यूनान के बाहर निकाल दिया। इस प्रकार हेलेनी लोगों का अधिकार यूनान पर हो गया और वे यूनानी बन गये।

यूनानी नगर-राज्य—हेलेनी जब यूनानी बन गये तो उन्हें अपने रहन-सहन को यूनानी प्रदेश के अनुकूल बनाना पड़ा। यदि यूनानी प्रदेश का मानचित्र देखें तो हमें ज्ञात होगा कि यह प्रदेश भूमध्यसागर में किसी मनुष्य के हाथ की पाँच उँगलियों की भाँति फैला हुआ है। इस प्रदेश के दक्षिण में क्रीट का द्वीप है। इस द्वीप से सभ्यता के बीज यूनानी प्रदेश में आये थे। यूनान के नक्शे को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि यूनानी प्रदेश के समुद्री-किनारे कटे-फटे हैं। इस प्रकार चारों ओर छोटी-बड़ी खाड़ियाँ बन गई हैं। इसका प्रभाव यूनानियों के जीवन पर पड़ा था। तूफानी समुद्र में यात्रा सरल नहीं थी। उस समय समुद्री यात्रा करना मौत के मुँह में जाने के समान था। इसलिए यूनान की भूमि के भाग जो समुद्र के कारण कटे-फटे थे, वहाँ के लोग आसानी से एक दूसरे से नहीं मिल पाते थे। जो जिस भाग में बस गया, बस गया। इस प्रकार पहाड़ों की हर एक घाटी में स्वतंत्र नगर बस गये। आने-जाने की सुविधा न होने के कारण सभी नगरों को अपना प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता था। हर एक नगर के अपने नियम थे और रहन-सहन की शैली थी। इस प्रकार यूनान में कई नगर-राज्य (City-States) बन गये थे। इन नगर राज्यों के नाम यूबोई, लोकरिस, एटेलिया, फोसिस, बोइयोटिया, अकीइया, अर्गोलिस, एलिस, अर्काडिया, मेसेनिया, लासोनिया और एटिका थे। स्पार्टा लासोनिया नगर-राज्य का भाग था और एथेंस एटिका का।

यूनानी जनतंत्र—यूनानी नगर-राज्य में जनतंत्र (Democracy) का विकास सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आरम्भ में यूनानियों में कोई गरीब और अमीर नहीं

होता था। सबके पास कुछ भेड़ और गायें थीं। सबके घर कच्चे थे। किसी पर किसी प्रकार का बंधन नहीं था। जब कभी कोई मतभेद होता अथवा न्याय की आवश्यकता होती तो लोग बाजार में एक स्थान पर एकत्रित हो जाते थे और एक वृद्ध सज्जन के सभापतित्व में सभा करते थे। इस सभा में हर एक को अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति थी।

लेकिन जब यूनानियों में वर्ग-भेद उत्पन्न हुआ, जब कुछ लोग धनी हुए तो शोषण आरंभ हुआ। धनिकों ने गरीबों के परिश्रम का लाभ उठाना शुरू किया। इस प्रकार नगर में दो वर्ग बन गये—एक तो धनिक वर्ग और दूसरा गरीब वर्ग। धनिकों की संख्या कम थी, लेकिन फिर भी वे धन के बल से नगर की सभा के सभापति बन जाते थे। इस प्रकार जो जनतंत्र की भावना पहले थी वह नष्टप्राय हो चली। धीरे-धीरे धनिक वर्ग के लोग नगर के राजा के समान हो चले। उन्हें इतने ही में संतोष नहीं होता था। वे आपस में लड़ने लगे कि नगर पर किसका अधिकार हो। इस युद्ध में गरीब सिपाही मारे जाते थे। युद्ध के बाद किसी एक धनिक का नगर पर अधिकार हो जाता था। लेकिन इस प्रकार नगर पर अधिकार करनेवाले को नगर के लोग निर्दयी कहते थे।

यूनान के नगर—राज्यों पर निर्दयी लोगों का अधिकार पर्याप्त समय तक था। लेकिन निर्दयता की सीमा होती है। यूनानी और अधिक दिनों तक इस प्रकार तानाशाही बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने सुधार का प्रयास किया और इस प्रयास के परिणामस्वरूप पश्चिमी संसार में सर्वप्रथम जनतंत्र का विकास हुआ।

एथेन्स का महत्त्व—जनतंत्र के विकास और प्रगति में

एथेन्स का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एथेन्स के लोगों ने जनतंत्र (Democracy) की भूमिका तैयार की। उन्होंने सोलन (Solon) नामक विद्वान से सामाजिक नियमों का निर्माण कराया। सोलन ने ऐसे नियम बनाये जो सब दृष्टि से पूर्ण थे। अतः इन नियमों के पालन से यूनानी जाति में जीवन आ गया और उनके चरित्र का निर्माण होने लगा। जिस प्रकार आजकल पूँजीजीवी वर्ग और सर्वहारा वर्ग में संघर्ष चल रहा है, उसी प्रकार उस समय भी संघर्ष था। इस संघर्ष में पूँजीजीवी वर्ग ग़रीबों को दबाता रहा। अतः सोलन ने इस अन्याय को रोकने के लिए नियम बनाये। लेकिन चूँकि सोलन स्वयं धनिक वर्ग का व्यक्ति था, इसलिए उसने ऐसे नियम बनाये जो कि धनिकों के विरुद्ध न थे, पर ग़रीबों पर होनेवाले अन्यायों को रोकते थे। ऐसे नियमों में एक नियम यह भी था कि अगर किसी एथेन्स निवासी को किसी बात की शिकायत हो तो उसे यह अधिकार था कि वह अपनी शिकायत एथेन्स के तीस निवासियों द्वारा संगठित जूरी (Jury) के सामने रखे। इस जूरी के सदस्य शिकायत करनेवाले से भलीभाँति परिचित होते थे। अतः न्याय की पूर्ण संभावना थी। इस प्रकार जूरी के सामने धनी और दीन में कोई अंतर नहीं माना जाता था और न्याय की पूर्ण व्यवस्था थी।

जनतंत्र के विकास में एथेन्स ने न्याय का प्रबन्ध करने के बाद प्रत्येक नागरिक को नगर की व्यवस्था में भाग लेने के लिए भी बाध्य किया। नगर सम्बन्धी जब कोई समस्या उपस्थित होती थी, तो उसको सुलझाने के लिए नगर के सभी निवासी सभा में उपस्थित होते थे और उपस्थित होकर अपनी सम्मति देते थे। जो बात बहुमत से निश्चित होती थी, उसी के अनुसार कार्य होता था। इस प्रकार एथेन्स में जनतंत्र का विकास हुआ और इसके द्वारा

यूनानी सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में एक नये अध्याय का आरंभ हुआ।

सामाजिक जीवन—एथेन्स में जिस जनतंत्र का विकास हुआ, उसके अनुसार प्रत्येक नागरिक को 'नगर-राज्य' के प्रबन्ध में भाग लेना पड़ता था। इस प्रकार 'नगर-राज्य' की रक्षा करना उनका प्रमुख सामाजिक कर्त्तव्य था। लेकिन 'राज्य' के प्रति निष्ठा रखते हुए यूनानी लोग अपने सामाजिक जीवन की ओर भी पर्याप्त ध्यान देते थे।

यूनानी समाज में जनतंत्र के नियमानुसार प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र माना जाता था। लेकिन यह स्वतंत्रता उन्हीं नागरिकों को प्राप्त था जिनके माता-पिता उस नगर के मूल-निवासी थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यूनान में अनेक नगर राज्य थे और वे अपना प्रबन्ध स्वयं करते थे। अतः जिस व्यक्ति का जन्म किसी नगर विशेष में न हुआ होता था, वह उस नगर में विदेशी माना जाता था। एथेन्स के नागरिक वही माने जाते थे, जिनका जन्म एथेन्स में हुआ था। अन्य लोग विदेशी थे और इन्हें नगर-राज्य प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार न था।

दास-प्रथा इस प्रकार यूनान के नगर-राज्यों में स्वतंत्र लोग और विदेशी लोग होते थे। विदेशी लोग दास के समान समझे जाते थे और इस प्रकार यूनान में दास-प्रथा चली। इन गुलामों की संख्या बहुत बड़ी थी। कहते हैं कि पाँच यूनानियों में चार गुलाम होते थे औरएक स्वतंत्र होता था। अतः बड़ी संख्या में दास थे। इन गुलामों का मुख्य कार्य था स्वतंत्र यूनानियों की सेवा करना। जो स्वतंत्र यूनानी थे उन्हें घरेलू जीवन के झंझटों से मुक्त रहना पड़ता था क्योंकि घर के सभी काम दास करते थे। इस प्रकार स्वतंत्र नाग-

रिक के पास पर्याप्त अवकाश होता था। कला और संस्कृति के विकास के लिए अवकाश आवश्यक है। जिस जाति के लोगों को अवकाश मिलता है, उस जाति में सभ्यता और संस्कृति का प्रसार होता है। इस प्रकार स्वतंत्र नागरिक अवकाश मिलने पर कला और साहित्य के विकास में लग गये। यूनानी कला और काव्य का विकास इतना और इस प्रकार हुआ कि सारे यूरोप की सभ्यता और संस्कृति पर उसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

दासों की दशा—लेकिन यह तो कोई भी स्वीकार कर सकता है कि दास-प्रथा किसी भी रूप में अपेक्षित नहीं है क्योंकि यह मनुष्यता के प्रति अन्याय है। अतः यूनानी दास-प्रथा का किसी प्रकार समर्थन नहीं किया जा सकता। पर उसके पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दास-प्रथा के विषय में जो वर्तमान कल्पना है, उससे यूनानी दासों की दशा का अनुमान नहीं किया जा सकता। इसके कई कारण हैं। सबसे पहला कारण यह है कि यूनानी दासों में दास-भावना का अभाव-सा था। दास होते हुए भी वे अपने को दास नहीं समझते थे क्योंकि उन्हें कई प्रकार की सुविधायें प्राप्त थी। स्वतंत्र यूनानी नागरिक कला और संस्कृति की साधना में, नगर राज्य की रक्षा में तथा अन्य इसी प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते थे। साथ ही उनका जीवन-दर्शन 'सादा जीवन उच्च विचार' पर आधारित था। इस प्रकार यूनानी दास की दशा—विशेष कर आर्थिक दशा—कभी कभी स्वतंत्र यूनानियों से अच्छी होती थी। यूनानी दास व्यापार तथा अन्य उद्योग-धंधों को भी करते थे। अतः उन्हें आर्थिक लाभ सरलता से हो जाता था और सादगी के सिद्धान्त के कारण खर्च भी कम होता था।

यूनानी सादगी—यहाँ यूनानी सादगी का संक्षिप्त वर्णन

आवश्यक है क्योंकि इसका प्रभाव यूनानी-शिक्षा के उद्देश्यों पर पड़ा है।

यूनानी जीवन में सादगी का प्रवेश अधिक अवकाश के लिए हुआ था। स्वतंत्र यूनानी यह चाहते थे कि उन्हें सभ्यता और संस्कृति के प्रसार के लिए अधिक समय मिले। इसलिए उन्होंने अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं में अधिक से अधिक कमी की। अपने रहन सहन में भी उन्होंने सादगी से काम लिया। उसके रहने का मकान भी अत्यन्त साधारण ढंग से बना होता था। उसके मकान में केवल एक कमरा होता था और उस कमरे में एक द्वार होता था। इसके अतिरिक्त मकान के सामने आँगन को चारदीवारी से घेर देते थे। उस खुले स्थान में कुछ पौधे लगा देते थे। इस प्रकार इस आँगन में यूनानी कुटुम्ब अपना जीवन व्यतीत करता था। जब पानी बरसता था, अथवा शीत अधिक पड़ती थी, तो वे कमरे के भीतर चले जाते थे।

दास-शिक्षक—स्वतंत्र यूनानी परिवार में घर के काम-धंधे करने के लिए दास नौकर होते थे। एक दास भोजन बनाता था तो दूसरा अन्य कार्य करता था। इसी प्रकार एक दास बालकों को पढ़ाने का भी कार्य करता था। यह दास-शिक्षक अक्षर ज्ञान और साधारण जोड़-बाकी की शिक्षा देता था। लेकिन जहाँ तक उच्च-शिक्षा का सम्बन्ध है, उसे स्वतंत्र यूनानी प्रदान करते थे।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि यूनान के यूनानी अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करते थे। लेकिन किसी भी जाति की परीक्षा उस समय होती है, जब उस पर संकट आता है। यूनान पर संकट फारस देश की सेनाओं के आक्रमण के रूप में आया। इस संकट के समय यूनान के नगर-राज्यों में एकता न हो सकी। स्पार्टा और एथेन्स में पुरानी प्रतिस्पर्धा थी। इसलिए जब एथेन्स पर

फारस के लोगों ने आक्रमण किया तो स्पार्टा के लोगों ने एथेन्स की सहायता नहीं की। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यूनान के नगर राज्यों में स्पार्टा की सैनिक शक्ति सबसे बढ़कर थी क्योंकि स्पार्टा में सैनिक शिक्षा की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता था।

फारस का पहला आक्रमण जब एथेन्स पर ईसा से ४९० वर्ष पूर्व हुआ तो उस समय एथेन्स ने किसी प्रकार विजय प्राप्त की। लेकिन लगभग आठ वर्ष बाद फारस ने दूसरा हमला किया। इस समय फारस को फोनेशियन लोगों की सहायता प्राप्त थी। अतः उसकी सहायता से फारस को विजय की पूर्ण आशा थी। इधर यूनान के कुछ नगर राज्यों में एकता हुई और इस एकता द्वारा एक सम्मिलित सेना का संगठन हुआ। इसमें स्पार्टा के सैनिक भी सम्मिलित थे। घोर युद्ध हुआ, पर एक देशद्रोही के कारण यूनानी हार गये। लेकिन कुछ वर्षों के बाद यूनान के लोगों ने फारस के लोगों को हरा दिया और यूनान को स्वतंत्र कराया। यूनान के इस स्वतंत्रता-संग्राम की कहानी वीरता की कहानी है। इस संग्राम का प्रभाव यूनान के जीवन पर पड़ा और विशेषकर शिक्षा पर। लेकिन यहाँ इस संग्राम के वर्णन की आवश्यकता नहीं है। हाँ, स्पार्टा और एथेन्स जो कि यूनान के दो महत्त्वपूर्ण नगर राज्य थे, उनका वर्णन आवश्यक है, क्योंकि इनका प्रभाव सम्पूर्ण यूनान पर पड़ता था।

स्पार्टा और एथेन्स—यूनान के नगरों में स्पार्टा और एथेन्स का नाम प्रसिद्ध था। ये दोनों नगर यूनानी संस्कृति के केन्द्र माने जाते थे। शिक्षा के इतिहास में भी स्पार्टा और एथेन्स का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए हमें स्पार्टा और एथेन्स के सांस्कृतिक सम्बन्ध को समझना चाहिए।

भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव किसी भी नगर के विकास पर पड़ता है। स्पार्टा और एथेन्स पर भी भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। स्पार्टा नगर एक घाटी में बसा था। उसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ थे। इस प्रकार स्पार्टा में आना अथवा स्पार्टा से बाहर जाना कठिन कार्य था। आने-जाने की कठिनाई के कारण स्पार्टा में नये विचारों का प्रसार नहीं हो सका। इसलिए स्पार्टा के लोग अधिकतर सैनिक स्वभाव के रहे। उनके लिए सैनिक शिक्षा साहित्य-शिक्षा से श्रेष्ठ थी। इसलिए स्पार्टा के लोग अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर सैनिक श्रेष्ठता को प्राप्त करते थे।

इसके विपरीत एथेन्स नगर का विकास मैदान में हुआ। वहाँ आने-जाने की कठिनाई नहीं थी। इसलिए एथेन्स में नवीन विचारों का प्रसार सुगमता से हो जाता था। इसके अतिरिक्त एथेन्स के निकट समुद्री किनारा था। इस प्रकार एथेन्स का सम्बन्ध कुछ अन्य देशों से भी था। इसका प्रभाव एथेन्स के सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ा। एथेन्स के लोगों की आर्थिक दशा स्पार्टा के लोगों से अधिक अच्छी थी। एथेन्स में कला और साहित्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था और वहाँ स्पार्टा की सैनिक मनोवृत्ति का एक प्रकार से अभाव था। इस प्रकार हम देखते हैं कि एथेन्स स्पार्टा से अधिक समृद्ध था। एथेन्स की इस समृद्धि को देखकर स्पार्टा के लोगों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई और बाद में यही एथेन्स और स्पार्टा में युद्ध का कारण हुई। यह युद्ध लगभग तीस वर्ष तक चलता रहा और अंत में एथेन्स की हार हुई। लेकिन एथेन्स के लोगों में कला, साहित्य और शिक्षा के प्रति जो भावना थी, उसका नाश नहीं हुआ था। कालान्तर में एथेन्स के लोगों ने पुनः अपना सांस्कृतिक निर्माण किया। यह सांस्कृतिक

पुनरोत्थान पहले से भी बढ़कर था। इस प्रकार एथेन्स अब केवल यूनान के ही लिए नहीं, वरन् यूनान के निकटवर्ती अन्य देशों के लिए भी शिक्षा का प्रकाशस्तम्भ बन गया।

यूनानी शिक्षा की सांस्कृतिक भूमिका का जो संक्षिप्त विवरण यहाँ उपस्थित किया गया है, उससे यूनानी शिक्षा के स्वरूप को समझने में सहायता मिलेगी। यूनानी जाति किस प्रकार बसी, उसने किन संकटों का सामना किया और फिर अपना सांस्कृतिक विकास कैसे किया, आदि प्रश्न यूनानी शिक्षा के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

यूनानी शिक्षा का स्वरूप

प्रगतिशीलता—यूनानी सांस्कृतिक भूमिका में यूनानी-शिक्षा के स्वरूप का परिचय प्राप्त करना कुछ सरल अवश्य प्रतीत होगा। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यदि हम यूनानी-शिक्षा का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि उसमें परिवर्तन के लिए पर्याप्त स्थान है। वहाँ रूढ़वादिता के दर्शन नहीं होते। यूनानी जीवन-दर्शन का आधार ही कुछ ऐसा था जो सत्य का स्वागत करता था और अनुभव को अपनाता था। इसलिए सर्वप्रथम तथ्य जो कि हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वह है यूनानी लोगों की बौद्धिक विशालता। इस बौद्धिक विशालता के कारण यूनानी लोगों ने तटस्थ होकर प्रत्येक समस्या का अध्ययन किया। इस प्रकार वे विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते रहे। इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि यूनानी जनता आरम्भकाल से प्रगतिशील रही है। उसकी शिक्षा का इतिहास भी विकास और प्रगति का इतिहास है। बहुधा यह देखा गया है कि अतीत के मोह के कारण प्रगति का विरोध होता है। लेकिन यूनान में इस मोह का अभाव था।

व्यक्ति और समाज में संतुलन—यूनानी शिक्षा के स्वरूप के परिचय से दूसरा तथ्य यह प्राप्त होता है कि उसमें व्यक्ति और समाज का सुंदर सामंजस्य है। बहुधा यह देखा गया है कि समय-समय पर होनेवाले ऐतिहासिक परिवर्तनों के मूल में व्यक्ति और समाज के संतुलन का अभाव होता है। यह

सत्य इतिहास से स्पष्ट रूप में ज्ञात होता है। लेकिन यह यूनानी विद्वानों की श्रेष्ठता का द्योतक है कि उन्होंने इस सनातन समस्या की ओर पर्याप्त ध्यान दिया और शिक्षा में व्यक्ति और समाज के सुंदर सम्बन्ध को स्थान दिया।

यहाँ पर आवश्यक है कि हम यह स्पष्ट रूप से समझ लें कि व्यक्ति के विकास के लिए उचित और अनुकूल अवसरों की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति को उचित और अनुकूल अवसर नहीं मिलते, तब उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है और वह समाज में त्रुटियाँ उत्पन्न करता है। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि समाज व्यक्ति का समूह है। यदि समाज के व्यक्ति 'समूह' की ओर ध्यान नहीं देते, और केवल व्यक्तिगत स्वार्थों को देखते हैं, तो स्पष्ट है कि 'व्यक्तियों के समूह' समाज की क्षति होगी और वह उन्नति नहीं कर सकेगा। इसी प्रकार यदि समाज व्यक्ति के विकास के लिए उचित और अनुकूल अवसर प्रस्तुत नहीं करता, तो वह भी अपने कर्त्तव्य से च्युत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि व्यक्ति का समाज के प्रति और समाज का व्यक्ति के प्रति उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व का स्पष्ट बोध कराना शिक्षा के स्वरूप के अंतर्गत है। पश्चिमी शिक्षा के इतिहास में, इस तथ्य की ओर सर्वप्रथम यूनानियों ने ध्यान दिया। यह यूनानी शिक्षा के लिए बड़े महत्त्व की बात है। लेकिन यह इतिहास से स्पष्ट है कि यूनानी लोग व्यक्ति और समाज में पूर्ण रूप से संतुलन स्थापित नहीं कर सके। यदि कर पाते तो वे अधिक काल तक बने रहते और उनका ह्रास न होता।

व्यक्तित्व का विकास—यूनान की सांस्कृतिक भूमिका में हमें यह ज्ञात हो चुका है कि यूनान में नगर-राज्यों की व्यवस्था थी और प्रत्येक नागरिक का नगर-राज्य के प्रति

दायित्व होता था। दूसरे शब्दों में प्रत्येक यूनानी नगर-प्रबन्ध तथा राजनीतिक कार्यों से सीधा सम्बन्ध रखता था। अतः ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि प्रत्येक यूनानी साधारण राजनीतिक तथ्यों से परिचित हो। इसी दृष्टि से यूनानी शिक्षा में व्यक्ति के विकास की पूरी व्यवस्था की गई। विकास के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति के मार्ग में रुकावटें डाली जाती हैं, तो स्पष्ट है कि उसका विकास नहीं हो सकेगा। इसीलिए यूनान में व्यक्ति को स्वतंत्रता की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था।

कोई व्यक्ति स्वतंत्र है, अथवा परतंत्र, इसकी कसौटी उसको मिले अधिकारों में है। यदि व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह उस शासन में जिससे कि वह शासित होता है, वांछित परिवर्त्तन के लिए सुझाव दे सके, तो यह कहना होगा कि व्यक्ति अपनी सीमा के भीतर स्वतंत्र है। उसे राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त है और वह अपने मत को शासन के सम्बन्ध में प्रगट कर सकता है। यूनान में शिक्षा के दृष्टिकोण से व्यक्ति को यह स्वतंत्रता प्रदान की गई और अनेक पश्चिमी विद्वानों का यह मत है कि सर्वप्रथम यूनान ही में व्यक्ति के विकास के दृष्टि से राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान की गई और इस प्रकार व्यक्ति के **राजनीतिक व्यक्तित्व के पूर्ण विकास** का अवसर प्रदान किया गया।

नैतिकता—यूनानी-शिक्षा में यह भी देखा जाता था कि साधन और साध्य में एक नैतिक सम्बन्ध हो। जब यूनानी नागरिक को स्वतंत्रता इसलिए दी गई कि वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके, तब साथ ही यह भी अनिवार्य किया गया

कि व्यक्तित्व के विकास के नाम पर अनैतिक साधनों को न अपनाया जाय। इस तथ्य को और स्पष्ट करने की आवश्यकता है। अतः एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि यूनानी नागरिक को नगर-राज्य की भलाई के लिए कार्य करना है, तो इस कार्य को करने के पूर्व यूनानी नागरिक के लिए यह आवश्यक था कि वह कार्य-पद्धति पर नैतिकता की दृष्टि से विचार कर ले। विचार करते समय वह तटस्थ होता था और वह धार्मिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक स्वार्थों से अपने को मुक्त रखता था। इतना ही नहीं, यदि वह यह अनुभव करता था कि उसका धर्म उसकी नैतिकता के मार्ग में रोड़े अटका रहा है, तो वह उस धर्म को भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जाता था। यही कारण है कि यूनानी संस्कृति तथा दर्शन में नैतिकता का बड़ा महत्त्व है और इसी नैतिकता के आधार पर ही धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक विश्वासों का पोषण होता था। अतः हम देखते हैं कि यूनानी व्यक्तित्व के विकास के लिए नैतिकता आवश्यक थी। इस नैतिकता को हम व्यक्ति में पाते हैं और साथ ही यूनानी-समाज में भी। पर यह स्मरणीय है कि वैयक्तिक नैतिकता और सामाजिक नैतिकता अपनी अलग स्वतंत्र सत्ता भी रखते हैं। यूनानी शिक्षा की यह चौथी विशेषता है कि उसने वैयक्तिक नैतिकता को पूर्ण रूप से ग्रहण किया। पर साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार नैतिक विकास की पूरी स्वतंत्रता थी, वहीं यह भी आवश्यक था कि कुछ ऐसे नैतिक नियमों का निर्माण भी हो जाता जो सर्व-साधारण के पथ-प्रदर्शक होते; क्योंकि सर्वसाधारण से यह आशा नहीं की जा सकती कि उनमें नीर-क्षीर विवेक हो, और वे प्रत्येक स्थिति में सही मार्ग अपना सकें।

जिज्ञासा और उत्सुकता—यूनानी-शिक्षा के स्वरूप में निखार लाने का श्रेय यूनानी लोगों की जिज्ञासु-प्रवृत्ति को है। वे सभी विषयों के सम्बन्ध में जानना चाहते थे। वे किसी भी बात को अंध-विश्वास के आधार पर स्वीकार नहीं करते थे। वे वही बातें मानते जो उनकी बुद्धि स्वीकार करती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि यूनानी लोग प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में जानने के लिए उत्सुक होते थे और उन्हीं बातों को स्वीकार करते थे, जो उनकी बुद्धि ग्रहण कर सकती थी। इसका कारण यूनानी दर्शन और दार्शनिकों के सम्बन्ध में जानने से हो जायगा, क्योंकि इन्हीं के कारण यूनानी लोग जिज्ञासु और बौद्धिक प्रवृत्ति के बने। इस सम्बन्ध मे हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यूनानियों को इतनी स्वतंत्रता प्राप्त थी कि वे अपना बौद्धिक विकास कर सकें। उन पर कोई बात लादी नहीं जाती थी। न तो राज्य और न ही धर्म उनके बौद्धिक-विकास में रुकावटें डालता था। यदि ऐसा न होता तो यूनानी लोगों के लिए अपना बौद्धिक विकास करना अत्यन्त कठिन था। वास्तव में यह आवश्यक भी है कि प्रत्येक मनुष्य विवेक और विचार से कार्य करे, अपनी बुद्धि का प्रयोग करने के लिए सदा उत्सुक रहे और नई-नई बातों के सम्बन्ध में जिज्ञासा करे, तभी वह उन्नति और अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है। यूनानी शिक्षा ने इस सत्य को अपनाया और व्यक्ति के राजनीतिक, नैतिक और बौद्धिक विकास में एक ऐसा समन्वय उपस्थित किया जो कि व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में सहायक होगा।

सौंदर्य की उपासना—अभी तक यूनानी शिक्षा के स्वरूप के विषय में जितनी बातें हमें ज्ञात हुई हैं, उससे यह बोध

होता है कि यूनानी शिक्षा बुद्धिप्रधान है क्योंकि विवेक और विचार, जिज्ञासा और उत्सुकता, व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता आदि के पीछे बुद्धि की प्रधानता है। लेकिन यूनानी दार्शनिक जानते थे कि केवल बुद्धिवादी होने से व्यक्ति सफल नहीं हो सकता। जब तक बुद्धिपक्ष और हृदय पक्ष, अथवा, विचार और भावना में सामंजस्य उपस्थित नहीं होता, तब तक व्यक्ति का पूर्ण विकास असंभव है। यदि कोई व्यक्ति केवल बुद्धिवादी है और उसका हृदय बुद्धि का दास है, तो यह स्पष्ट है कि उस व्यक्ति में हृदय-पक्ष के अभाव के कारण सौंदर्य के प्रति आकर्षण न होगा। दूसरी बात यह है कि व्यक्ति केवल बाहरी ज्ञान को ग्रहण ही नहीं करता, वरन् वह अपने को व्यक्त करना चाहता है। वास्तव में व्यक्ति की यही विशेषता है। जो व्यक्ति अपने को व्यक्त करना नहीं चाहता, उसके व्यक्तित्व में बड़ी कमी होती है। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि अभिव्यक्ति की इच्छा एक बात है और अभिव्यक्ति की क्षमता दूसरी। यूनानी-शिक्षा में इस तथ्य की ओर ध्यान दिया गया और शिक्षा में सौंदर्य की उपासना और कलात्मक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार जहाँ यूनानी विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में बड़ी से बड़ी बातों की कल्पना करते थे और सिद्धान्त बनाते थे, वहीं वे अपनी अनुभूतियों को कला के माध्यम से स्वरूप प्रदान करते थे। यूनान में कला की देवियों (Muses) की आराधना का भी यही रहस्य है। तो यह स्पष्ट है कि यूनानी शिक्षा ने बुद्धिपक्ष के साथ-साथ हृदय-पक्ष के विकास की ओर भी इतना ध्यान दिया जो इतिहास के दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है।

यूनानी शिक्षा का सार—यूनानी शिक्षा के स्वरूप का

साधारण परिचय प्राप्त कर लेने के बाद, हम इस स्थिति में हैं कि यूनानी शिक्षा के सार को ग्रहण कर सकें। इस दृष्टि से हमें यह ज्ञात होता है कि यूनानी शिक्षा में व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की ओर पूरा ध्यान दिया गया। इसके लिए व्यक्ति को राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान की गई, उसकी बुद्धि का विकास किया गया, उसे नैतिकता की शिक्षा दी गई और अंत में उसे सौंदर्य बोध और अभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान की गई। ऐसा करने का उद्देश्य केवल यह था कि व्यक्ति अपना पूर्ण विकास करके अपने जीवन को सुखी बना सके। प्रसिद्ध विद्वान अरस्तू का एक कथन इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है। अरस्तू ने कहा—जीवन का उद्देश्य है सुंदरता और आनन्द के साथ रहना। इस प्रकार हम देखते हैं कि यूनानी शिक्षा ने व्यक्ति के जीवन को सुखी बनाने का प्रयास किया, साथ ही उसमें इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिया गया कि जीवन में केवल भौतिक अथवा पार्थिव वस्तुओं का ही महत्त्व नहीं है। इनसे भी बढ़कर कुछ वस्तुएँ हैं जो हृदय में रस उत्पन्न करती हैं और आनन्द प्रदान करती हैं।

यूनानी शिक्षा की त्रुटियाँ—यूनानी शिक्षा में जहाँ अनेक विशेषतायें थीं, वहीं उसमें कुछ त्रुटियाँ भी थीं जो हमें यह बताती हैं कि इन्हीं त्रुटियों के कारण शिक्षा के क्षेत्र में नये प्रयोग होते गये और नये विधान बनते गये। यदि यूनानी-शिक्षा में त्रुटियाँ न होतीं, तो फिर आज की शिक्षा केवल यूनानी शिक्षा की पुनरावृत्ति होती। अतः हमें जानना चाहिए कि यूनानी शिक्षा में कौन सी त्रुटियाँ थीं।

दास-प्रथा—यदि हम यूनानी समाज को देखें तो उसमें हमें दास-प्रथा मिलती है। यूनान में विदेशियों को दास-वृत्ति

अपनानी पड़ती थी और इनकी संख्या भी नब्बे प्रतिशत थी। इन नब्बे प्रतिशत व्यक्तियों को विकास के सभी अवसरों का अभाव था। इनका कार्य तो यूनानी नागरिकों की सेवा करना था, और उनके दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। यदि यूनानी शिक्षा में मानवता के प्रति आदर और भक्ति होती तो मनुष्य-मनुष्य में भेद न दिखाई पड़ता।

नारी की अवहेलना—यूनानी शिक्षा की दूसरी त्रुटि नारी-शिक्षा का अभाव है। आधुनिक युग में सबको समान अवसर और अधिकार देने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। लेकिन यूनान में स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था और उन्हें घर से बाहर भी जाने नहीं दिया जाता था। इस प्रकार यूनानी स्त्रियाँ पुरुषों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं और उनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं थी। पर बाद में नारी-शिक्षा का प्रबन्ध हुआ जिसके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

समाज के प्रति उदासीनता—यूनानी-शिक्षा की तीसरी त्रुटि इस बात में मिलती है कि जहाँ उसमें व्यक्ति और समाज में संतुलन, सामंजस्य और समन्वय स्थापित करने की कोशिश की गई और कुछ सीमा तक इसमें सफलता भी मिली, वहीं हम यह भी देखते हैं कि उसमें मानव-समाज के प्रति एक प्रकार की उदासीनता थी। व्यक्ति अपने विकास के लिए बुद्धि-विचार से कार्य लेता था और उसकी नैतिकता भी अधिकतर व्यक्तिगत थी। इस कारण एक व्यक्ति जो बात ठीक समझता था, वही बात ठीक होती थी और जो उसकी दृष्टि में नैतिक था, वही उसकी नैतिकता की द्योतक थी। इस प्रकार यूनानी में नियमन की आवश्यकता थी। लेकिन इस आवश्यकता की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मानव-

समाज के प्रति उदासीनता और सहानुभूति का अभाव उत्पन्न हो गया।

वाक्-चातुर्य्य की प्रधानता—यूनानी शिक्षा की चौथी त्रुटि इस तथ्य में दिखाई पड़ती है कि उसमें विचार-विनिमय की इतनी प्रधानता थी कि वह केवल वाक्-चातुर्य्य पर जाकर समाप्त हो जाता था। प्रत्येक यूनानी इस बात की कोशिश करता था कि वह अपनी वाक् पटुता से अपनी बुद्धिमता सिद्ध करे। अतः वह वास्तविक तथ्यों की ओर ध्यान नहीं देता था और अपने वाक्-चातुर्य्य की सिद्धि के लिए समय-समय पर सभी सिद्धान्तों की तिलांजलि दे देता था। इतना ही नहीं उन्हें अपने सत्य, सम्मान और उत्तरदायित्व का भी ध्यान नहीं होता था। उनके लिए तो बाल की खाल उतारना ही सब कुछ था।

आध्यात्मिक अभाव—यूनानी-शिक्षा की पाँचवीं और अंतिम त्रुटि यह थी कि यूनानियों के लिए तात्कालिक समय का सबसे अधिक महत्त्व था। उनकी दृष्टि में भूत और भविष्य का का कोई महत्त्व न था। इसका कारण यह था कि उनमें आध्यात्मिक भावना और विश्वास का अभाव था। इसलिए वे यह नहीं मानते थे कि जैसा कर्म वे करते हैं, उसीके अनुसार उन्हें फल मिलता है। यदि यूनानियों में इस प्रकार का विश्वास होता तो उनमें दया और करुणा की प्रधानता होती और वे वृद्ध तथा अयोग्य बालकों के प्रति सहानुभूति रखते और उनके दुःखों को समझते।

लेकिन अंत में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यूनानी-शिक्षा सभ्यता के उदयकाल में विकसित हुई थी। आदिम मानव धीरे-धीरे सभ्यता की ओर अग्रसर हो रहा था। अतः यह स्वाभाविक था कि उसमें त्रुटियाँ हों। पर यूनानी लोगों ने यथाशक्ति विकास और प्रगति के लिए प्रयास किया, इसमें भी संदेह नहीं है।

यूनानी-शिक्षा का होमर-युग

यूनानी-शिक्षा के स्वरूप का परिचय उपस्थित करते समय यूनान की शिक्षा के इतिहास के विविध कालों की विशेषता का उल्लेख नहीं किया गया था। जो त्रुटियाँ भी दिखाई गई थीं, उन्हें यदि ऐतिहासिक भूमिका में जब देखेंगे, तब उनकी 'भीषणता' और 'बर्बरता' कम हो जायगी। अतः अब यह आवश्यक है कि हम यूनान की शिक्षा के इतिहास के विभिन्न युगों से परिचित हों जिससे कि यूनानी-शिक्षा भली भाँति समझ में आ जाय।

होमर-युग—यूनान के इतिहास और विशेष कर शिक्षा के इतिहास का आरम्भ काल होमर-युग कहलाता है। होमर यूनान के प्रसिद्ध कवि का नाम है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि होमर केवल एक व्यक्ति नहीं था, वरन् कवियों की एक परम्परा होमर के नाम से प्रसिद्ध थी। इसके अतिरिक्त यह कोई नहीं जानता कि होमर का जन्म काल और जन्म स्थान क्या है। प्रसिद्ध प्राचीन यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस ने होमर का काल ईसा से ८५० वर्ष पूर्व निश्चित किया था। कुछ विद्वान् १००० वर्ष पूर्व मानते हैं। मगर फिर भी इस सम्बन्ध में मतभेद हैं और निश्चय रूप से होमर-युग की सीमा निश्चित नहीं की जा सकती।

होमर के महाकाव्य—लेकिन समय की सीमा के प्रश्न को भूल जाने के बाद जब होमर की प्रसिद्ध रचनाओं 'इलियड' और 'ओडिसे' पर दृष्टिपात करते हैं, तो इस महान् कवि की महानता के दर्शन हो जाते हैं। 'इलियड' और 'ओडिसे' होमर

के महाकाव्य हैं। इसके कथानक में यूनानी वीरता, उत्साह और कल्पना का चमत्कार मिलता है। इन रचनाओं का होमर-युगीन शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। एक बार एक यूनानी ने सुकरात (Socrates) से कहा कि मेरे पिता मुझे शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने मुझे होमर की रचनाओं को कंठस्थ कराया और वे रचनायें मुझे आज भी याद हैं। कहिए तो मैं आपको अभी सुना दूँ। सुकरात होमर-युग के लगभग चार सौ वर्ष बाद हुआ था। मगर उसके समय में भी होमर की रचनाओं का महत्त्व था।

महाकाव्य का शिक्षा में स्थान—होमर की ये दोनों रचनायें बीस-बीस हजार पंक्तियों की हैं। लेकिन प्रत्येक काव्य की इन बीस हजार पंक्तियों को यूनानी बालक बड़ी रुचि और गर्व के साथ पढ़ता और याद करता था क्योंकि इन पंक्तियों में उसके पूर्वजों का इतिहास, उनके पराक्रम का वर्णन और उनकी वीरता का चित्र था। इस प्रकार होमर की रचनाओं को पढ़कर यूनानी बालक अपने पूर्वजों की वीरता से ही नहीं प्रभावित होता था, वरन् वह इस प्रसन्नता से भी फूल उठता था कि उसके शरीर में पराक्रमी पूर्वजों का रक्त है। यह एक बहुत बड़ी बात है। किसी भी राष्ट्र को जिसे उन्नति करना है और आगे बढ़ना है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने बालकों को अपने देश के प्राचीन महाकाव्यों को शिक्षा में उचित स्थान दे। यूनानियों ने इस तथ्य को ग्रहण किया और होमर के महाकाव्यों को शिक्षा में उचित स्थान दिया।

होमर-युगीन शिक्षा—होमर ने अपने महाकाव्य 'इलियड' में 'कर्म' और 'ओडिसे' में 'ज्ञान' के आदर्श को स्थापित

किया था। 'इलियड' महाकाव्य का नायक एकलीज् (Achilles) कर्म के आदर्श का प्रतीक होकर ट्राय के महायुद्ध में भाग लेता है और ओडिसे का नायक ओडिसियस ज्ञान मार्ग का अनुसरण करता है। इस प्रकार होमर ने कर्म और ज्ञान के आदर्शों को यूनानी लोगों के सामने रखा। उस समय यूनानी लोग होमर के महाकाव्यों के अनुसार चलने का प्रयास करते थे। लेकिन यूनानी इतिहास के उदयकाल में यूनानी सभ्यता की वह विशेषता उत्पन्न नहीं हुई थी जिसे कि हम आज जानते हैं। उस समय होमर-युग में आदिम प्रवृत्तियाँ सभ्यता का वर्ण धारण करने का प्रयास कर रही थीं। अतः हमें होमर-युग की शिक्षा में व्यावहारिकता तथा कार्य की अधिकता अधिक, और सैद्धान्तिक शिक्षा की कमी दिखाई पड़ती है। होमर-युग की शिक्षा में साहित्यिक तत्त्वों का अभाव था, लेकिन युद्ध-कला की प्रधानता थी। यूनानी युवक अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति—जैसे भोजन, वस्त्र और रहन-सहन की शिक्षा घर में, और युद्ध तथा सामाजिक कार्यों की शिक्षा युद्ध में और सामाजिक जीवन में भाग लेकर पाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि होमर-युग की शिक्षा व्यावहारिक थी और उसके लिए शिक्षालय की व्यवस्था न थी।

होमर के आदर्शों का प्रभाव : कर्मशीलता—होमर ने कर्म और ज्ञान के आदर्शों को यूनानी लोगों के सामने रखा था। जहाँ तक कर्म के आदर्श का सम्बन्ध है, उसे शिक्षा में समाज के हित-कार्यों की दृष्टि से देखा जाता था। अतः कर्म के आदर्श को माननेवाला यूनानी युवक सैनिक शिक्षा भली भाँति प्राप्त करता था। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि यह सैनिक शिक्षा वास्तविक युद्ध में भाग लेकर ही प्राप्त की जा सकती थी। इसके

अतिरिक्त यूनानी युवक में वीरता की भावना भी भरी जाती थी। लेकिन यह वीरता की भावना समय के अनुसार कार्य करती थी। उदाहरण के लिए यदि शत्रु से यूनानी युवक दुर्बल पड़ता है तो उस समय भाग जाना उसकी वीरता के अनुकूल था। अवसर के अनुकूल युद्ध में कार्य करना यूनानी सैनिक की वीरता थी। साथ ही वह यूनानी यह भी जानता था कि उसका उद्देश्य केवल युद्ध ही नहीं करना है, वरन युद्ध में विजयी होना है। विजय प्राप्त करने के लिए सभी उपायों से काम लेना वीरता के अंतर्गत है। इसका अर्थ यह हुआ कि सुविधा के अनुसार अवसर देखते हुए कार्य करना कर्म के आदर्श के अनुकूल था।

निर्णय-शक्ति का विकास—शिक्षा में होमर का दूसरा आदर्श ज्ञान का था। इस आदर्श के अनुसार प्रत्येक यूनानी इस बात की कोशिश करता था कि उसमें निर्णय-शक्ति का विकास हो। वह जो भी निर्णय करे, उससे समाज का कल्याण हो। इस प्रकार जहाँ वह एक ओर कर्म की प्रधानता को स्वीकार करता था, वहीं वह उचित कर्म करने के लिए ज्ञान भी चाहता था। यह सच है कि ये दोनों आदर्श बिना एक दूसरे के साथ सहयोग के अपने प्रभाव को बहुत कम कर देते हैं। इसलिए यूनानी शिक्षा में ज्ञान के आदर्श को भी अपनाया गया। जिसके कारण यूनानी लोगों में निर्णय शक्ति का विकास हुआ और वे अपने समाज के हित के लिए भी कार्य कर सके। साथ ही उन्होंने इस ज्ञान के द्वारा अपने में वह विचार-शक्ति उत्पन्न करने का भी प्रयास किया जिसके द्वारा वे अपनी अवांछित इच्छाओं को वश में करते थे। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि इन प्रयासों

के होते हुए भी उनके चरित्र में दोष थे। धोखे-धड़ी से भी स्वार्थ सिद्ध करना उन्हें स्वीकार था।*

होमर-युगीन शिक्षा का समाज पर प्रभाव—होमर का कर्म और ज्ञान का आदर्श सामाजिक जीवन को प्रभावित करने में पूर्ण सफल हुआ। लोगों में सामाजिक भावना का उदय इतिहास में संभवत: सर्वप्रथम दिखाई पड़ा। इन आदर्शों के अनुसार शिक्षा होने के कारण लोग विचार-विनिमय करके किसी निश्चय पर पहुँचते थे और इस प्रकार वे अपनी विचार-शक्ति के द्वारा भावनाओं पर नियंत्रण रखते थे। साथ ही उस समय जो विचार-विनिमय की समितियाँ होती थीं, वे भी लोगों को शिक्षित बनाने में सहायक होती थीं क्योंकि वहाँ खुल कर व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती थी। किसी के लिए मनाही न थी। इस सुविधा के कारण हर एक को अभिव्यक्ति का अवसर मिलता था और वह निर्भय होकर निर्णय कर सकता था। इस प्रकार विचारों के आदान-प्रदान से समाज के लिए नियम निर्धारित किये जाते थे, पर साथ ही व्यक्ति को यह स्वतंत्रता होती थी कि वह प्रत्येक नियम की उपयुक्तता को अपनी बुद्धि के बल से देखे और यदि उसे मान्य हो तो स्वीकार करे। अत: हम देखते हैं कि यूनानी समाज का संगठन व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता को मानते हुए हुआ। होमर-युगीन शिक्षा की यूनान के लिए यह बड़ी देन थी क्योंकि इसी के सहारे भविष्य में यूनान का सम्पूर्ण

---

* ...There entered much of craftiness—even of deceit,—which, since for common good, was permissible—P. Monroe—"A Text-book in the History of Educatian" page 65.

विकास होनेवाला था। पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि शिक्षा के लिए स्वतंत्र रूप से कोई प्रबन्ध न होने के कारण व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का निखरा हुआ रूप नहीं दिखाई पड़ता। उनके लिए तो होमर के महाकाव्य 'शिक्षा-शास्त्र' का काम देते थे और उस महाकाव्य के प्रतिपादित आदर्श ही उनकी शिक्षा के विषय थे। इतना ही नहीं होमर ने यूनानियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन का काम किया। यह तथ्य त्यों त्यों स्पष्ट होता जायगा, ज्यों ज्यों हम यूनानी शिक्षा के इतिहास से परिचित होते जायेंगे।

यूनानी शिक्षा का प्राचीनकाल : स्पार्टी शिक्षा

प्राचीन यूनानी शिक्षा—यूनानी शिक्षा का प्रथम ऐतिहासिक काल होमरयुग के नाम से प्रसिद्ध था। इस युग के बाद 'प्राचीन काल' आता है। प्राचीन काल का आरम्भ उस समय से माना जाता है जब कि यूनान में नगर-राज्यों का संगठन भली भाँति हो गया था। होमर युग में इस संगठन का अभाव था। लेकिन प्राचीन काल में नगर राज्य पूर्ण रूप से विकसित हो गये थे। इन विकसित नगर राज्यों में स्पार्टा और एथेन्स का महत्त्वपूर्ण स्थान था। ये दोनों नगर यूनानी संस्कृति और शिक्षा की दो धाराओं के प्रतीक थे। इसलिए यूनानी शिक्षा के प्राचीन-काल का इतिहास विशेषकर स्पार्टा और एथेन्स की शिक्षा का इतिहास है। लेकिन इसके पूर्व कि हम स्पार्टा और एथेन्स की शिक्षा को ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, यह आवश्यक है कि हम प्राचीन काल की शिक्षा की सामान्य धाराओं से परिचित हो लें।

शिक्षा में नागरिकता—यूनान में जब नगर-राज्यों का संगठन हुआ, उस समय प्रत्येक यूनानी के कर्त्तव्यों और अधिकारों पर भी प्रकाश पड़ा क्योंकि नगर-राज्य के नागरिक से यह आशा की जाती थी कि वह अपनी नागरिकता के लिए कुछ करेगा। फलतः हम देखते हैं कि इस काल में यूनानियों को कुशल नागरिक बनाने की ओर ध्यान दिया गया और इसी दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्य भी निश्चित किये गये। यदि इस काल में

नगर-राज्यों का संगठन न होता तो शिक्षा में नागरिकता को शायद स्थान भी न दिया जाता। लेकिन समाज के विकास के साथ साथ शिक्षा के उद्देश्यों का भी विकास होता है। इसीलिए यूनानी शिक्षा के प्राचीन काल में नागरिकता की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस नागरिकता के अंतर्गत नगर की रक्षा-कार्य का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस प्रकार शिक्षा में नागरिकता को स्थान देकर यूनानियों ने नगर-राज्य के विकास और रक्षा का पर्याप्त प्रबन्ध किया।

अभिजात वर्ग का प्रभाव—यूनानी शिक्षा में नागरिकता की कल्पना के साथ-साथ कुलीनता का आदर्श भी आया। इस आदर्श के अनुसार यूनानियों में एक अभिजात वर्ग (Nobility) उत्पन्न हुआ जो दर्शन और विज्ञान के अध्ययन की ओर अधिक ध्यान देता था। अभिजात वर्ग के इस आदर्श के पीछे उनकी निम्नकोटि और असभ्य जातियों के प्रति तिरस्कार की भावना कार्य कर रही थी। अतः अपने को सभ्य सिद्ध करने के लिए अभिजात वर्ग ने अपने लिए अवकाश के समय की व्यवस्था की और दर्शन-विज्ञान का अध्ययन आरंभ किया। इस अध्ययन के फलस्वरूप वे केवल जीवन व्यतीत करने का ही प्रयास नहीं करते थे, वरन् वे उस जीवन को भलीभाँति व्यतीत करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध यूनानी विद्वान् अरस्तू का एक कथन है कि यदि ग्रामों का उद्देश्य केवल जीवन व्यतीत करना है, तो नगरों का उद्देश्य जीवन को भली भाँति व्यतीत करना है। इस प्रकार यूनान का अभिजात वर्ग 'भली भाँति' पर बल देता था और इसके लिए दर्शन, विज्ञान और कलाओं का अध्ययन करता था साथ ही इनके द्वारा व्यक्तित्व का विकास अभिजात वर्ग के अनुकूल करना चाहता था। इस प्रवृत्ति

का भी प्रभाव प्राचीन यूनानी शिक्षा पर पड़ा और साथ ही एक प्रकार का वर्ग-भेद अथवा जाति-भेद भी प्रगट हुआ।

प्राचीन यूनानी शिक्षा में नागरिकता के उद्देश्य और अभिजात वर्ग के आदर्शों की दृष्टि से स्पार्टा और एथेन्स में शिक्षा का स्वरूप महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। नागरिकता के लिए स्पार्टा में शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया, और एथेन्स में अभिजात वर्ग के अध्ययन की ओर। इसीलिए स्पार्टा की शिक्षा में सैनिक शिक्षा और एथेन्स में दर्शन, विज्ञान और कला की शिक्षा की प्रधानता थी। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, प्राचीन यूनानी शिक्षा की दो धारायें थीं। एक धारा का प्रतीक स्पार्टी शिक्षा है और दूसरी धारा का प्रतीक एथेन्स की शिक्षा। अतः इन दोनों धाराओं का अध्ययन आवश्यक है।

स्पार्टी समाज—स्पार्टी शिक्षा पर स्पार्टा के जीवन का विशेष प्रभाव पड़ा था। जैसा समाज होता है, वह वैसी ही शिक्षा की व्यवस्था अपने लिए करता है। इस दृष्टि से जब हम स्पार्टा के समाज को देखते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि स्पार्टा के समाज मे तीन वर्ग के लोग रहते थे। प्रथम वर्ग में वे लोग थे जो अपने को डोरिक वंश का मानते थे। डोरिक यूनान देश का एक प्रदेश था और उसका मुख्य केन्द्र स्पार्टा था। इसी प्रकार आयोनिया प्रदेश का मुख्य केन्द्र एथेन्स था। अतः स्पार्टा में एक वर्ग शुद्ध स्पार्टा-निवासियों का था। स्पार्टा में दूसरा वर्ग 'किसानों' का था। ये किसान खेती करते थे और इनके परिश्रम का फल मूल स्पार्टी लोग भोगते थे। यदि ये बेचारे भी स्पार्टा के मूल निवासी होते तो इन्हें भी सुख से जीवन व्यतीत करने का अधिकार होता। स्पार्टी समाज में तीसरा वर्ग दासों

का था। यूनान में दास प्रथा प्रचलित थी। इसके सम्बन्ध में हम यूनान की सांस्कृतिक भूमिका में विचार कर चुके हैं। अतः यहाँ पुनरावृत्ति अपेक्षित नहीं है।

मूल स्पार्टी लोगों ने इस प्रकार अपने रहन-सहन के लिए खेतिहर मज़दूरों और दासों के वर्ग बनाये थे। इन दो वर्गों के लोगों की संख्या मूल स्पार्टी लोगों से कहीं अधिक थी। मगर फिर भी इन्हें दासता के बंधन में रखा जाता था। इन्हें किसी प्रकार का राजनीतिक अधिकार प्राप्त न था। स्पार्टा में जो दास-वर्ग था वह तो राज्य के अधिकार में होता था और वह राज्य की इच्छानुसार कार्य करता था। उसकी अपनी कोई इच्छा न होती थी।

स्पार्टी आर्थिक व्यवस्था—कोई भी समाज हो, जब तक उसकी आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन नहीं किया जाता, तब तक उसका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अतः जब हम स्पार्टा की आर्थिक व्यवस्था देखते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि स्पार्टा के किसान वर्ग पर अनेक प्रकार के कर लगाये जाते थे। बहुत से कर ऐसे और इतने अधिक थे कि वे न्याय की सीमा पार कर जाते थे। उन्हें तो दूसरे शब्दों में सरकारी लूट ही कहा जा सकता था। दूसरी ओर 'राज्य' ने स्पार्टा की सम्पूर्ण भूमि को नौ हज़ार टुकड़ों में बाँट दिया था। भूमि के प्रत्येक टुकड़े की उपज और आमदनी पर एक स्पार्टी सैनिक और उसका परिवार निर्भर करता था। इस प्रकार मूल स्पार्टी सैनिक को कोई कार्य नहीं करना पड़ता था और वे दूसरे के परिश्रम का फल बिना हिचक के भोगते थे। यदि इस आर्थिक व्यवस्था को सामाजिक न्याय की दृष्टि से देखें तो कहना होगा कि स्पार्टा में आर्थिक शोषण भीषण रूप में होता था।

स्पार्टी शिक्षा का उद्देश्य—स्पार्टा की इस सामाजिक

और आर्थिक भूमिका में जब हम स्पार्टी शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करते है तो हमें ज्ञात होता है कि उन्होंने 'नगर राज्य' की रक्षा की दृष्टि से सैनिक शिक्षा पर विशेष बल दिया। इस प्रकार स्पार्टी शिक्षा का उद्देश्य था व्यक्ति का शारीरिक विकास करना, उसे साहसी बनाना और उसमें राज्य के प्रति अपार भक्ति उत्पन्न करना। इस उद्देश्य के फलस्वरूप स्पार्टी युवक में वीरता की भावना का विकास होता था और वह राज्य की रक्षा के लिए प्राणों की बलि देने के लिए सदा तत्पर रहता था। यदि स्पार्टा में 'राज्य की रक्षा' को महत्त्व न दिया जाता तो संभवतः इस प्रकार की शारीरिक और सैनिक शिक्षा का प्रबन्ध न किया जाता। साथ ही स्पार्टी शिक्षा में अनुशासन और आज्ञापालन पर भी बड़ा बल दिया जाता था। इसका कारण यह था कि सेना में बिना अनुशासन के कार्य नहीं चल सकता। यदि प्रत्येक सैनिक मनमाना काम करने लगे, तो युद्ध में सफलता असंभव हो जाय। इसलिए स्पार्टी शिक्षा का उद्देश्य अनुशासन और आज्ञापालन की प्रवृत्ति का विकास करना था। इसी सम्बन्ध में यह भी समझ लेना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति, जो सैनिक शिक्षा प्राप्त करता है, यदि उसमें साहस वीरता, और डटकर युद्ध करने की क्षमता न हो, किस प्रकार योग्य और श्रेष्ठ सैनिक बन सकता है ? वास्तव में एक सैनिक की श्रेष्ठता उसके साहस, वीरता और आत्म-संयम पर है। इन्हीं सब दृष्टियों से स्पार्टी शिक्षा के उद्देश्यों में इन सब तथ्यों का समावेश किया गया। इतना ही नहीं स्पार्टी शिक्षा यह चाहती थी कि व्यक्ति राज्य के प्रति अपना सम्पूर्ण समर्पण कर दे। इस प्रकार स्पार्टा का व्यक्ति अपना व्यक्तित्व खोकर स्पार्टा नगर-राज्य का नागरिक-सैनिक मात्र रह जाता था।

स्पार्टी शिक्षा का संगठनः जन्म से सात वर्ष तक— शिक्षा में सैनिक उद्देश्यों की प्रधानता के कारण स्पार्टी शिक्षा के संगठन में भी एक प्रकार की कठोरता दिखाई पड़ती है। अतः हम देखते हैं कि स्पार्टा में शिक्षा के संगठन के लिए सबसे पहले स्पार्टी शिशु को राज्य की सम्पत्ति मान लिया जाता था। 'स्पार्टी शिशु पर राज्य का अधिकार होगा और उसकी शिक्षा-दीक्षा राज्य के आदेशानुसार होगी'। इस नियम के कारण जब बालक जन्म लेता था तब माता बालक को लेकर राज्य-सभा में जाती थी। राज्य-सभा में बालक के शरीर का निरीक्षण होता था। यदि बालक स्वस्थ और सुंदर होता तो राज्य की ओर से माता को आदेश होता था कि वह उसका पालन-पोषण सात वर्ष तक करे। यदि कहीं बालक अस्वस्थ अथवा असुंदर हुआ तो उसे पहाड़ की चोटी से गिरा देने की आज्ञा दी जाती थी, क्योंकि स्पार्टी लोग यह चाहते थे कि उनकी जाति में कोई अस्वस्थ और असुंदर व्यक्ति न हो। इस प्रकार अस्वस्थ बालक आरम्भ ही में मौत के मुँह में डाल दिया जाता था। यह प्रथा कितनी अमानुषिक थी, इसकी कल्पना मात्र से हृदय दहल जाता है।

आठ वर्ष से बारह वर्ष तक— राज्य की ओर से आठ से बारह वर्ष के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध होता था। इसके लिए राज्य ने एक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया था, जिसे कि पेडॉनॉमस की पदवी प्राप्त थी। पेडॉनॉमस स्पार्टा राज्य में शिक्षा का पूरा प्रबन्ध करता था। इस अधिकारी का चुनाव प्रतिवर्ष होता था और इसकी सहायता के लिए कई सहायक (बिडोई) भी नियुक्त होते थे। इस प्रकार पेडॉनॉमस राज्य में शिक्षा-कार्य की देख रेख करता था। जब बालक सात वर्ष का हो जाता था, तब

वह पेडॉनॉमस को सौंप दिया जाता था। पेडॉनॉमस उस बालक को छात्रावास में भर्ती कर देता था। वहाँ इस बात का भी प्रबन्ध था कि बालक ६४–६४ की टोलियों में रखे जायँ। हर एक टोली का नियंत्रण राज्य की ओर से नियुक्त युवक, जिसे 'ईरेन' कहते थे, करता था। इतना ही नहीं प्रत्येक टोली जिसे कि 'इलाई' कहते थे, उसका निरीक्षण करने के लिए राज्य का प्रधान शासक 'एफर्स' प्रति दसवें दिन आता था। निरीक्षण के समय बालकों को नंगा कर दिया जाता था और यह देखा जाता था कि उनके शरीर के किसी भाग में मोटापा तो नहीं आ गया है। यदि किसी बालक का शरीर यूनानी मूर्तियों की भाँति सुगठित न होता तो उसे दंड मिलता था। इसलिए बालक व्यायाम और खेल-कूद में भाग लेकर अपने शरीर को सुडौल और सुगठित बनाये रखने की कोशिश करते थे। इस प्रकार आठ से बारह वर्ष की अवस्था के बालक राज्य की देख-रेख में छात्रावासों में रहते थे। इनकी शिक्षा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान् प्लूटार्क का कथन है कि इन बालकों में जो सबसे अधिक साहसी और चरित्रवान् होता था, वही टोली (Company) का नायक नियुक्त किया जाता था। नायक की देख-रेख में रहना, उसकी आज्ञा का पालन करना अन्य बालकों का कार्य था। वास्तव में इस अवस्था में जो शिक्षा दी जाती थी उसे तो 'अनुशासन का अभ्यास' ही कहा जा सकता है। साथ ही बालकों को छात्रावास में एक साथ रखने का उद्देश्य यह भी था कि उनमें भाईचारे की भावना उत्पन्न हो और वे एक दूसरे में कोई भेद-भाव न रखें।

तेरह वर्ष से अठारह वर्ष तक—जब बालक तेरहवें वर्ष में प्रवेश करता था तो सहनशीलता का विकास करने के लिए उसकी कठिनाइयों को बढ़ा दिया जाता था। यह तो साधा-

रण नियम ही था कि बालक अपने नायक 'ईरेन' की पूरी सेवा करे। अतः 'ईरेन' बालकों को दिन भर किसी न किसी काम में लगाये रखता था। कभी-कभी 'ईरेन' के लिए बालकों को चोरी भी करनी पड़ती थी। स्पार्टा के नियमानुसार प्रत्येक सम्पत्ति राज्य की होती थी। अतः बिना राज्य की आज्ञा से किसी वस्तु को लेना दंडनीय था। इसलिए 'ईरेन' जब किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए कहता तो बालकों को चोरी भी करनी पड़ती थी। यदि कोई बालक चोरी करते समय पकड़ा जाता था तो उसे दंड मिलता था, अन्यथा उसका कुछ भी न होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालकों के लिए पकड़ा जाना ही अपराध था, चोरी करना नहीं।

जब बालक अपने 'ईरेन' के लिए वस्तु लाने जाते थे तो उन्हें काफी घूमना भी पड़ता था। इस घूमने में उन्हें देश के प्रत्येक भाग का भौगोलिक ज्ञान हो जाता था। घूमते समय बालक शिकार का भी अभ्यास करते। इस प्रकार उन्हें अच्छा शिकारी बनने का भी अभ्यास हो जाता था। साथ ही उनमें सहनशीलता बढ़ाने के लिए शरीर को कोड़े से पीटने की व्यवस्था की जाती थी। जो बालक बिना किसी उफ़ के जितनी अधिक मार सह सकता था वह कठिनाइयों को सहने में उतना ही अभ्यस्त माना जाता था। अतः शरीर पर मार सहने की प्रतियोगिता होती थी। प्रतियोगिता में विजयी होने के लिए मार खाते और कभी कभी मार खाते-खाते उनकी मृत्यु भी हो जाती थी। इस प्रकार सैनिक जीवन में कठिनाइयों का सामना करने के लिए सहन-शीलता का विकास किया जाता था। आधुनिक शिक्षा की दृष्टि में सहनशीलता की क्षमता उत्पन्न करने की यह पद्धति अमानुषिक कही जा सकती है। मनुष्य शिक्षा को इस अमानुषिक वाता-

वरण से निकाल कर मानवीय वातावरण में किस प्रकार लाया यह शिक्षा के इतिहास का रोचक विषय है।

अठारह वर्ष के बाद—जब बालक अठारह वर्ष का युवक हो जाता था, तब उसे सैनिक शिक्षा का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता था। इसके लिए उसके जीवन में कठोरता बढ़ा दी जाती थी। उसे सफल सैनिक बनाने के लिए युद्ध-कला की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। स्पार्टा में दासों के जीवन का कोई मूल्य न था। अतः इन युवकों की व्यावहारिक सैनिक शिक्षा दासों पर धावा बोलकर दी जाती थी। इस धावे में दासों की निर्ममता और निर्दयता के साथ हत्या होती थी।

अठारह वर्ष के युवकों को 'एफेबी' अथवा 'कडेट' की कक्षा में भर्ती करते थे। भर्ती होने के बाद वे दो वर्षों तक सैनिक शिक्षा का विशेष अध्ययन करते थे। इस समय वे ऐसे युवकों के साथ रहते थे जिन्हें 'मिलीरेन' कहते थे। इस काल में युवकों की कठोर परीक्षा होती थी। हर दसवें दिन उनकी जाँच की जाती थी और अधिकतर उन्हें अपना समय अपने से छोटे बालकों की शिक्षा के लिए देना पड़ता था। इस प्रकार वे जो कुछ भी सीखते थे, उसे दूसरे को सिखाते भी थे। जब युवक बीस से तीस वर्ष की अवस्था में होता तो उसे 'ईरेन' बना दिया जाता था। 'ईरेन' बन कर युवक बालकों की शिक्षा की ओर ध्यान देता था। तीस वर्ष की आयु के बाद युवक पूरा 'मनुष्य' माना जाता और उसे नागरिक अधिकार प्राप्त होते थे। साथ ही वह अपने परिवार का अध्यक्ष भी बनता था। लेकिन इसके बाद भी उसे 'बैरेक' में सैनिक की भाँति रहना सबके साथ भोजनालय में भोजन करना, और बालकों का शिक्षक बनना पड़ता था

और समय पड़ने पर युद्ध भी करना पड़ता था। इस प्रकार स्पार्टी शिक्षा का संगठन सैनिक उद्देश्यों को पूर्ण करता था।

वृद्धों का शिक्षण कार्य—हमने बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था और फिर नागरिक के कर्त्तव्यों की चर्चा की। अब हम स्पार्टा में वृद्धों का क्या स्थान था, उस पर विचार करेंगे।

स्पार्टा में यह प्रथा थी कि प्रत्येक युवक के लिए एक उत्साहक हो। यह उत्साहक वृद्धजन होते थे। अतः प्रत्येक वृद्ध एक नवयुवक को चुन लेता था और उसका उत्साहक बन जाता था। इस चुनाव में वृद्धजन होनहार युवक को चुनते थे क्योंकि युवक की सफलता में उत्साहक की भी सफलता सम्मिलित थी। इसलिए वृद्ध सावधानी से अपने लिए युवक का चुनाव करता था। इस युवक को स्पार्टा में 'श्रोता' कहते थे।

कभी कभी यह भी होता था कि किसी युवक के लिए कभी कोई उत्साहक न मिलता और वह बड़ा निराश हो जाता था। इसलिए सभी युवक बहुत परिश्रम करते जिससे कि उन्हें उत्साहक मिल जाय। साथ ही जब कभी कोई वृद्ध अपने लिए 'श्रोता' न चुनता तो उसे नागरिक अधिकारों से च्युत कर दिया जाता था। इसलिए हर एक वृद्ध भी इस बात का प्रयास करता था कि उसे होनहार युवक 'श्रोता' के रूप में मिल जाय। इस प्रकार वृद्ध युवक का उत्साहक बनकर उसकी शिक्षा की ओर ध्यान देते थे। वे नवयुवक की पूरी देख-भाल करते थे और उससे वार्तालाप करके अनेक अनुभव की बातें बताते थे। युवक भी वृद्ध का बड़ा ही सम्मान करते थे और खुशी-खुशी उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे।

शिक्षा के विषय—स्पार्टी शिक्षा के संगठन के विषय में

हमें जो ज्ञात हुआ उस पर हम स्पष्ट रूप से सैनिक उद्देश्यों का प्रभाव पाते हैं। सैनिक उद्देश्यों का प्रभाव शिक्षा के विषयों पर भी पड़ा था। स्पार्टी बालकों को जो शिक्षा दी जाती थी उसमें शारीरिक और सैनिक विषयों की प्रधानता थी क्योंकि स्पार्टा सैनिक-नागरिक चाहता था। शारीरिक और सैनिक विषयों की प्रधानता के कारण शिक्षा में उन विषयों का प्रायः अभाव था जो बौद्धिक और मानसिक विकास में सहायक होते थे। अतः शिक्षा में शारीरिक विकास के लिए खेल-कूद, व्यायाम और कुश्ती की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। कुश्ती के द्वारा सहनशीलता और आत्म-नियंत्रण उत्पन्न करने में सहायता मिलती थी। इसलिए कुश्ती लड़ने का काफी अभ्यास किया जाता था। सैनिक योग्यता के लिए बनावटी युद्ध का प्रबन्ध भी हो जाता था।

इसके अतिरिक्त शिक्षा के विषयों में साधारण लिखने-पढ़ने को भी स्थान दिया जाता था, क्योंकि बिना इसके उनका काम नहीं चल सकता था। स्पार्टा-राज्य के राजदूतों के पास संदेश भेजने तथा राज्य का हिसाब रखने के लिए लिखने-पढ़ने का ज्ञान आवश्यक माना जाता था। लिखने-पढ़ने के अलावा उन्हें सामूहिक गान-नृत्य की भी शिक्षा दी जाती थी। इस नृत्य में भी एक प्रकार से व्यायाम होता था और साथ ही उनमें आत्मसंयम, सहनशीलता, साहसिकता, वीरता, निर्भयता, अनुशासन और राज्य-भक्ति की भावनाओं का विकास भी होता था। इस प्रकार स्पार्टी सामूहिक गान और नृत्य से भी परोक्ष रूप में सैनिक उद्देश्यों ही की पूर्ति होती थी।

अवकाश के समय शिकार खेलना भी स्पार्टी शिक्षा के अंतर्गत था क्योंकि शिकार में काफी कसरत हो जाती है और इससे शारीरिक विकास में सहायता भी मिलती है। चूँकि स्पार्टी

समाज स्पार्टी बालक और युवक के लिए शिक्षालय के समान था, इसलिए हर एक प्रौढ़ व्यक्ति शिक्षक की भाँति कार्य करता था। बाजार, मार्ग अथवा भोजनालय में जहाँ भी युवकों और प्रौढ़ों में सम्पर्क होता था, वहीं पर स्पार्टी प्रौढ़, स्पार्टी युवक की भाषण-कला में परीक्षा लेते थे और उनके सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते थे जिनमें न्याय और आत्म सम्मान के सम्बन्ध में उन्हें अपने विचार प्रगट करने पड़ते थे। एक परिस्थिति में जो न्याय है, वही दूसरी परिस्थिति में अन्याय हो सकता है। इसी प्रकार आत्म-सम्मान की भावना के विषय में भी विचार-विनिमय होता था और विभिन्न परिस्थितियों में 'आत्म-सम्मान' के स्वरूप पर विचार किया जाता था।

नैतिक-शिक्षा—स्पार्टी शिक्षा में व्यक्तिगत गुणों का विकास भी सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता था। पर जब हम नैतिक दृष्टि से स्पार्टी-शिक्षा को देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि स्पार्टा के समाज में कोई बात छिपाकर नहीं होती थी। जो भी होता, उसे सब देखते थे। नैतिकता की दृष्टि से किसी कार्य को छिपाकर करना ग़लत होता है। अतः इस चलन के कारण सभी काम खुलेआम किये जाते थे और यदि कोई काम बड़े-बूढ़ों के विचार से गलत होता, तो यह भी तुरन्त ही मालूम हो जाता था क्योंकि सभी को विचार प्रगट करने की स्वतंत्रता थी। इसके अतिरिक्त स्पार्टी उत्साहक अपने श्रोता युवक के नैतिक विकास की ओर पर्याप्त ध्यान देता था। उत्साहक और श्रोता में स्नेह का सम्बन्ध होता था और उत्साहक अपने श्रोता की उन्नति और प्रसिद्धि में अपनी उन्नति तथा प्रसिद्धि मानता था। इस प्रकार स्पार्टी युवक न्याय, आत्म-सम्मान, देश-भक्ति, सत्य, आत्म-त्याग और संयम आदि गुणों का अपने में

विकास कर नैतिक पथ का अनुसरण करता था। लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि इन नैतिक गुणों के होते हुए भी स्पार्टी युवक में उस संवेदना और सहानुभूति की कमी दिखाई पड़ती थी जो कि मानवता का प्राण है।*

नारी-शिक्षा—स्पार्टी में नारी का बड़ा आदर था, क्योंकि वह सैनिक-नागरिक की माता थी। इसके अतिरिक्त बालक आरम्भ के सात वर्षों में माता द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करता था। इसलिए स्पार्टी बालिका की शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। स्पार्टी बालिका आरम्भ में बालकों की भाँति कपड़ा पहनती थी। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा भी बालकों के समान होती थी। कभी-कभी बालक-बालिका में कुश्ती भी होती थी। स्पार्टी युवतियों को युवकों से मिलने-जुलने की स्वतंत्रता थी। उन्हें गृह-कार्य से भी काफी छुट्टी रहती थी क्योंकि दास-दासी गृह का कार्य कर दिया करते थे। इस प्रकार स्पार्टी बालिका और युवती की शिक्षा सैनिक उद्देश्यों से प्रभावित थी। हाँ, जब विवाह हो जाता था, तब व्यायाम नहीं करना होता था। लेकिन विवाह के पूर्व सभी स्त्रियों को अपना शारीरिक विकास करना पड़ता था और अपने में ऐसी क्षमता उत्पन्न करनी होती थी कि यदि पति या पुत्र की मृत्यु हो जाय तो किसी प्रकार का शोक न हो। नारी-हृदय भावुक होता है। स्पार्टी में नारी-शिक्षा इस प्रकार दी जाती थी कि नारी-हृदय से भावुकता निकल जाय और वे यथार्थ जीवन को भली भाँति समझ सकें।

---

* ......it must be admitted that while the Spartan moral training conserved certain elemental virtues, it effects morally, as well as physically had a hardening, even brutalizing tendency.—Dr. Paul Monroe.

स्पार्टी शिक्षा में त्रुटियाँ—यूनानी शिक्षा के प्राचीन काल की प्रमुख धारा स्पार्टी शिक्षा पर अब तक हम लोगों ने सम्यक् दृष्टि से विचार किया। लेकिन यदि इस शिक्षा की प्रधान त्रुटियों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि स्पार्टी शिक्षा में सबसे बड़ी त्रुटि बौद्धिक और कलात्मक तत्त्वों की थी। स्पार्टी शिक्षा उन गुणों का विकास करने में असमर्थ थी जो मनुष्य की बुद्धि और हृदय पक्ष में सुंदर सामंजस्य उपस्थित करते हैं। राज्य की रक्षा के निमित्त सारे समाज को एक सैनिक खेमे में बदल देना, कोई अच्छी बात नहीं है। साथ ही स्पार्टी शिक्षा में कलात्मक तत्त्वों का भी अभाव था। कलात्मक विषयों के अध्ययन से भावनाओं और संवेगों का उन्नयन होता है। मनुष्य अपने चित्त की वृत्तियों को भली भाँति समझ पाता है। इनके सहारे वह अपने स्वार्थ को भूलकर पर-उपकार की बात सोचता है। उसके मनमें दया, करुणा, संवेदना और सहानुभूति के लिए स्थान होता है। वास्तव में यही मनुष्य की मानवता के प्रतीक हैं। यदि मनुष्य में सहानुभूति नहीं है, तो वह किस काम का! इसी प्रकार जिस शिक्षा द्वारा बालकों में मानवीय गुणों का विकास न हो, वह शिक्षा भी किस काम की। अतः स्पार्टी शिक्षा जो कि सैनिक उद्देश्यों से पूर्ण रूपेण प्रभावित थी, इस ओर ध्यान न दे सकी।

एथेन्स की शिक्षा

प्राचीन यूनानी शिक्षा को दूसरी धारा एथेन्स की शिक्षा में दिखाई पड़ती है। अभिजात वर्ग ने दर्शन, कला और विज्ञान के अध्ययन द्वारा व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया था। यह तथ्य हमें एथेन्स की शिक्षा में दिखाई पड़ेगा। लेकिन इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम एथेन्स और उसके समाज से परिचित हो जाँय।

एथेन्स का महत्त्व—एथेन्स के इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनान की संस्कृति का केन्द्र एथेन्स रहा है। यदि स्पार्टा यूनान की सैनिक शक्ति का प्रतीक था तो एथेन्स उसकी संस्कृति का। इसका कारण यह था कि एथेन्स में दर्शन, कला और विज्ञान के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। साथ ही एथेन्स-निवासी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण व्यक्तिवादी था। इसलिए व्यक्तित्व का विकास व्यक्ति के लिए होता था और उसका राज्य के प्रति वह उत्तरदायित्व नहीं था जो कि स्पार्टा में पाया जाता है। एक ओर जहाँ व्यक्तित्व के विकास की सुविधाएँ थीं, दूसरी ओर उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई का भी सामना नहीं करना पड़ता था। प्राचीन एथेन्स में खेती और व्यवसाय का काफी प्रसार हो गया था।

जहाँ तक एथेन्स के समाज का महत्त्व है, उसके लिए दो व्यक्तियों को श्रेय दिया जाता है। इनमें से एक व्यक्ति सोलन था। सोलन ने एथेन्स की सभ्यता और संस्कृति के विकास और प्रसार की ओर पर्याप्त ध्यान दिया और यह सत्य है कि यदि सोलन न

होता तो शायद एथेन्स के समाज से बर्बरता जा भी न पाती। इसी लिए यह कहा जाता है कि सोलन ने एथेन्स को 'शिक्षित' बनाया।

महात्मा सोलन का कार्य—सोलन को जब एथेन्स की उन्नति का कार्य सौंपा गया तो उस समय वह अधेड़ व्यक्ति था। युवाकाल में सोलन व्यापार करता था और व्यापार के सम्बन्ध में भूमध्य सागर के प्रदेशों में खूब घूमा भी था। इसलिए सोलन को अधिक अनुभव था। व्यापार छोड़ने के बाद सोलन कविता करने लगा और उसकी कविता का साधारण जनता में बड़ा प्रचार था। उसमें दया, देशभक्ति और जन-साधारण की भावनाओं को समझने की शक्ति थी। दूसरे शब्दों में हम सोलन को प्राचीन एथेन्स का गाँधी कह सकते हैं। गाँधी जी की भाँति सोलन को भी महात्मा की उपाधि प्राप्त थी। अतः सर्वमान्य लोकप्रिय महात्मा सोलन ने एथेन्स के सुधार के लिए सबसे पहले किसानों और खेतिहरों के शोषण का अंत किया। सोलन ने उनके जीवन को सुखी बनाने के लिए सबसे पहले उन्हें ऋण-मुक्त बनाया। इस प्रकार सोलन की पहली आज्ञा से खेतिहर वर्ग ऋण-मुक्त बना और उसके जीवन में आशा का संचार हुआ।

उस समय ऋण चुकाने के लिए बालकों और पत्नी देने की भी प्रथा थी। इस कारण पारिवारिक सुख का अभाव था। लेकिन जब सोलन ने सभी को ऋण-मुक्त कर दिया तो परिवार संगठित होने लगा और लोग सुखी होने लगे। सोलन ने अनेक कार्य किये, उनका सम्पूर्ण वर्णन यहाँ संभव नहीं है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सोलन ने एथेन्स के लोगों को आशा दी, उन्हें यह बताया कि इस जीवन में सुख संभव है और इसके लिए प्रयास करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

वास्तव में सोलन ने एथेन्स के लोगों को एक जीवन-दर्शन दिया। इस प्रकार सोलन ने एथेन्स के व्यक्ति को वे अवसर प्रदान किये जिसमें कि उन्नति संभव थी। श्री टी० आर० ग्लोवर ने अपनी पुस्तक 'ऐन्शेंट वर्ल्ड' में सोलन के कार्यों के सम्बन्ध लिखा है—सोलन के कार्यों संक्षेप रूप यह था कि उसने व्यक्तित्व के महत्त्व को समझा और व्यक्ति को इस प्रकार स्वतंत्र किया जो कि उसके लिए एक नवीनता थी; उसने नई परिस्थितियों के अनुकूल विधान में परिवर्तन किया, और उस शक्ति का विकास किया जिससे एथेन्स में महान दार्शनिक और कवि उत्पन्न हुए। दर्शन, काव्य और कला का एक व्यक्तिगत स्तर होता है। इसके लिए व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। सोलन ने इसे अनुभव किया और इसका पूर्ण प्रबन्ध किया।*

शिक्षा का संगठन—इस प्रकार हम देखते हैं कि एथेन्स और स्पार्टा के समाज में एक मौलिक अंतर था और इसी भेद के कारण एथेन्स की शिक्षा स्पार्टा से भिन्न थी। इस भेद की दृष्टि एथेन्स की शिक्षा के संगठन पर भी पड़ी। सोलन ने माता-पिता के ऊपर बालक की शिक्षा का भार रखा। उसने यह नियम बना दिया कि जो माता-पिता बालक की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं करते, वे वृद्धावस्था में अपने पुत्र से किसी भी प्रकार की आशा नहीं रख सकते। यह बहुत बड़ी बात थी और इसका प्रभाव एथेन्स के समाज पर पड़ा। सभी माता-पिता अपनी-अपनी संतानों की शिक्षा की ओर ध्यान देने लगे।

शिक्षा के लिए शिक्षालय राज्य की ओर से नहीं होते थे। इसलिए शिक्षालयों का संचालन समाज द्वारा होता था। चूँकि

---

* The Ancient World by T. R. Glover. Page 65.

शिक्षा का उत्तरदायित्व समाज पर था इसलिए समाज शिक्षालयों की पूरी देख-भाल करता था और सरकार को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। हाँ, उस शिक्षा द्वारा उद्देश्य की पूर्ति की ओर राज्य अवश्य ध्यान देता था। एथेन्स का शासन यह चाहता था कि बालकों को संगीत और व्यायाम की शिक्षा भली भाँति दी जाय और इस शिक्षा की जाँच शासन द्वारा परोक्ष रूप में हो जाती थी।

बालक के प्रथम सात वर्ष—शिक्षा के संगठन की दृष्टि से एथेन्स के बालक को भी स्पार्टा के बालक की भाँति अपने घर पर ही व्यतीत करना होता था। अंतर केवल इतना था कि जहाँ स्पार्टा में बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व माताओं पर था, वहीं एथेन्स में यह कार्य दासियों और दाइयों पर छोड़ दिया जाता था। माता द्वारा देख-रेख न होने से शिक्षा स्पार्टा की भाँति न हो पाती थी। दूसरे व्यक्तिगत स्वतंत्रता के महत्त्व के कारण, बालक को अपने से भी विकास करने का अवसर दिया जाता था। इस प्रकार बालक के प्रथम सात वर्ष घर पर ही शिक्षा प्राप्त करने में व्यतीत होते थे। जिन बालकों के माता-पिता गरीब होते और शिक्षा का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, उन्हें घर पर नौ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करना पड़ता था।

आठ से सोलह वर्ष तक—सात वर्ष के बाद एथेन्स का बालक एक शिक्षक के सुपुर्द कर दिया जाता था। यह शिक्षक या तो दास होता था या नौकर। साधारणतः जो लोग वृद्ध होते थे अथवा अन्य किन्हीं कारणों से दूसरा काम नहीं कर सकते थे, उन्हीं को इस कार्य के लिए रखा जाता था। इस प्रकार जो शिक्षक रखे जाते थे, उनका प्रधान कार्य बालक की देखभाल और नैतिक विकास का था। बालक जहाँ-जहाँ जाता था, उसका

शिक्षक उसके साथ होता था। इस काल में बालक दो प्रकार के शिक्षालयों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता था। एक तो संगीत विद्यालय होता था और दूसरा व्यायाम-विद्यालय। सात वर्ष के बाद का बालक संगीत और व्यायाम की शिक्षा भलीभाँति प्राप्त करता था। इसके अतिरिक्त वह लिखना-पढ़ना भी सीखता था। पढ़ने के लिए उसे प्रसिद्ध कवियों की कवितायें दी जाती थीं। बालक इन कविताओं को गाता भी था। इस प्रकार कविता के साथ संगीत का भी सम्बन्ध होता था। यह कार्य आठ से सोलह वर्ष की अवस्था तक होता था।

सत्रह से अठारह वर्ष तक—सोलह वर्ष के बाद एथेन्स का तरुण किसी शिक्षक के अंतर्गत नहीं होता था। उसे किसी प्रकार की साहित्यिक अथवा संगीत की शिक्षा भी प्राप्त नहीं करना पड़ता था क्योंकि नौ वर्षों तक उसने इन विषयों का अध्ययन किया था। इसलिए इस अवधि में एथेन्स का तरुण व्यायाम-शाला में जाता था और वहाँ पर अपने से बड़ों और समवयस्कों से मिलता था। ऐसा करने से उसे विचारों के आदान-प्रदान का अवसर मिलता था। इन अवसरों को हम तरुण को प्राप्त स्वतंत्रता का भाग कह सकते हैं क्योंकि एथेन्स में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बड़ा बल दिया जाता था। पर साथ ही तरुण के चाल-चलन की देख-भाल करने के लिए भी नगर-राज्य की ओर से प्रबन्ध होता था। इस प्रकार तरुण अपनी सीमा के भीतर स्वतंत्र होते हुए नैतिक दृष्टि से बँधा था।

शारीरिक-विकास के लिए तरुण को व्यायामशाला में जाना पड़ता था। तरुणों की दो सुन्दर व्यायामशालायें नगर-राज्य की सीमा से बाहर बनी हुई थीं। एथेन्स में शुद्ध एथेन्स-निवासी तथा अन्य लोगों में भेद-भाव था। इसलिए दो व्यायामशालायें

थीं। जिस व्यायामशाला में शुद्ध एथेनी तरुण जाते थे उसे एकेडेमी कहते थे और जिसमें अन्य तरुण जाते थे, उसे सिनोसर्गीज़ (Cynosarges) कहते थे। इन व्यायामशालाओं में तरुण दो वर्षों की अवधि में प्रौढ़ विद्वानों से विचार-विनिमय करके अपना ज्ञान बढ़ाते थे। उनके इस विचार-विनिमय के क्षेत्र में समाज, राजनीति, दर्शन तथा अन्य विषय भी आ जाते थे। लेकिन हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि अभिजात वर्ग के तरुणों को ही पूर्ण-शिक्षा दी जाती और नागरिकता के लिए तैयार किया जाता था। इस प्रकार एथेन्स का अभिजात वर्ग शासन-सूत्र को अपने हाथ में रखने का प्रयत्न करता था। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि जिस वर्ग का शासन होता है, शिक्षा भी उसी वर्ग के हितों की रक्षा के निमित्त दी जाती है। यदि प्राचीन शिक्षा के क्षेत्र में वर्ग-प्रभाव देखना हो तो हमें एथेन्स की शिक्षा का इतिहास पढ़ना चाहिए और साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि उस समय एथेन्स प्रगतिशील माना जाता था।

अठारह वर्ष के बाद—अठारह वर्ष की अवस्था तक युवक बड़े लोगों से बाज़ार, मार्ग, न्यायालय, नाट्यगृह, तथा अन्य स्थानों में मिल कर बात-चीत करता था और अपने को नागरिकता के योग्य बनाता था। अठारह वर्ष के बाद उसे, यदि किसी प्रकार का शारीरिक अथवा नैतिक दोष न होता, नागरिकता का अधिकार दिया जाता था। इस अधिकार को प्राप्त कर लेने पर एथेन्स का युवक पूर्ण नागरिक बन जाता और नगर-सभा में बैठता था। उस समय एथेन्स के नागरिकों की पोशाक भी एक विशेष प्रकार की होती थी। जब कोई नागरिक बनता था तो उसे नागरिक की पोशाक धारण करना पड़ता था।

इस प्रकार एथेन्स में पोशाक की भिन्नता के कारण नागरिक पहिचान लिए जाते थे।

जिस प्रकार स्पार्टा के युवक को 'कडेट' बनकर सैनिक दक्षता प्राप्त करना पड़ता था, उसी प्रकार एथेन्स युवक भी सैनिक दक्षता नागरिक बन जाने के बाद प्राप्त करता था। लेकिन जहाँ स्पार्टा में इसके लिए दस वर्ष दिये जाते थे, वही एथेन्स में दो वर्ष। इसका कारण यह था कि स्पार्टा में राज्य का मूल उद्देश्य सैनिक शक्ति बढ़ाना था लेकिन एथेन्स में सभ्यता और संस्कृति को मूल स्थान दिया गया और सैनिक शक्ति को संस्कृति की रक्षा का साधन समझा गया। इस भेद के कारण सैनिक-दक्षता के काल में अंतर दिखाई पड़ता है।

सैनिक दक्षता की तैयारी—सैनिक दक्षता के लिए जो दो वर्ष एथेन्स का नया नागरिक देता था, उसमें से एक वर्ष उसे कठिन सैनिक अभ्यास में बिताना पड़ता था। बैरेक या कैम्प मे रहकर सैनिक-जीवन की सभी कठिनाइयों को अनुभव करना हथियार चलाना तथा युद्ध का अभ्यास करना प्रथम वर्ष के प्रधान कार्य थे। दूसरे वर्ष में सैनिक कार्य का प्रसार होता था। अब उन्हें नगर से दूर के प्रदेशों में जाकर रहना और भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। एथेन्स के प्रदेश की रक्षा के लिए सैनिकों को भौगोलिक बातें जानना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त एथेन्स का नया नागरिक अपने को सभी अवसरों के, चाहे वे सांस्कृतिक हों या सैनिक, अनुकूल बनाता था और इसकी परीक्षा भी राज्य की ओर से होती थी। इसका कारण यह था कि राज्य नागरिकों को पूर्ण स्वतंत्रता देने के साथ साथ उन पर परोक्ष रूप से समाज के हित में नियंत्रण भी रखता था। साथ ही एथेन्स में विभिन्न कार्यों की इतनी अधिकता थी कि सभी नागरिकों को

स्वेच्छापूर्वक उसमें भाग लेना स्वाभाविक था। एथेन्स की शिक्षा का संगठन इन विभिन्न कार्यों के अनुकूल किया गया था। इस प्रकार शिक्षा और समाज में पूर्ण सम्पर्क और सहयोग संभव था।

एथेन्स की शिक्षा के उद्देश्य—एथेन्स की शिक्षा का संगठन किन उद्देश्यों का लेकर हुआ था, इस प्रश्न का उत्तर हमें संगठन की रूप-रेखा से ही ज्ञात हो जाता है। एथेन्स की शिक्षा का प्रथम उद्देश्य था व्यक्तित्व का विकास करना। इसकी व्यवस्था सोलन ने ही कर दी थी। इसलिए व्यक्ति की शिक्षा का उद्देश्य भी उसे स्वतंत्रता प्रदान करना था। एक स्वतंत्र वातावरण में बालक का विकास हो यह प्रथम उद्देश्य था।

एथेन्स की शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था कुशल नागरिक बनाना। इसके लिए शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास की व्यवस्था की गई, क्योंकि वह व्यक्ति कुशल और सफल नागरिक नहीं बन सकता जिसका शरीर रोग ग्रस्त हो, जिसकी भावनाओं और प्रवृत्तियों का उन्नयन न हुआ हो और जो विचार-विनिमय न कर सकता हो। इसलिए कुशल नागरिकता की ओर सभी दृष्टियों से ध्यान देना शिक्षा का दूसरा प्रधान उद्देश्य था।

एथेन्स की शिक्षा के विषय—शिक्षा के विषय भी उद्देश्यों के अनुरूप होते थे। शारीरिक विकास के लिए खेल-कूद और व्यायाम का विषय था। मानसिक विकास के लिए संगीत और काव्य की व्यवस्था थी। काव्य का सम्बन्ध देश के इतिहास और भूगोल से भी होता था। अतः जब बालक किसी प्रसिद्ध काव्य का अध्ययन करता था तो उसे केवल काव्यसौन्दर्य का ही बोध नहीं होता था, वरन् उसका ध्यान कविता में वर्णित घटनाओं और प्रदेशों की ओर भी जाता था। इस प्रकार वह

अपने वीर योद्धाओं, देशभक्तों और नेताओं आदि से भी परिचित हो जाता था।

आरम्भ से लेकर सात वर्ष तक की शिक्षा के विषय अच्छी आदतें थीं। बालक को किस प्रकार चलना, उठना-बैठना चाहिए, और साथ ही कौन से कार्य अच्छे है और कौन से बुरे, इन सब बातों की शिक्षा प्रधान थी। सात वर्ष के बाद आठवें वर्ष से बालक की शिक्षा के विषय थे लिखना-पढ़ना; व्याकरण का अध्ययन, खेल-कूद, व्यायाम, संगीत और काव्य। उसे होमर, हेसिओड और ईसप की रचनाओं को पढ़ना पड़ता था। संगीत की ओर भी वह विशेष ध्यान देना था। शरीर के सौन्दर्य के लिए व्यायाम भी अत्यन्त आवश्यक था। इसलिए आठ वर्ष से सोलह वर्ष की शिक्षा में इन सभी विषयों का समावेश हुआ था।

सोलह वर्ष के बाद शिक्षा के विषय सैनिक कुशलता से सम्बन्धित थे। अठारह वर्ष की अवस्था तक युवक को उन सभी बातों को सीखना पड़ता था जो कि उसे योग्य सैनिक बनाने के लिए आवश्यक थे। अठारह वर्ष के बाद की शिक्षा व्यावहारिक थी। उसे व्यवहार द्वारा कुशल नागरिकता का अभ्यास करना पड़ता था।

एथेन्स की शिक्षण-पद्धति—शिक्षा के विषयों के बाद शिक्षण-पद्धति पर दृष्टि जाती है। इस दृष्टि से जब हम एथेन्स की शिक्षा को देखते हैं, तब हमें ज्ञात होता है कि वहाँ ऐसी शिक्षण-पद्धति की प्रधानता थी जिसमें 'करके सीखना' होता था। करके सीखने के लिए बालकों के सामने ऐसे अवसर उपस्थित किये जाते थे जो उनकी रुचि के अनुकूल थे। रुचि के

अनुकूल अवसर प्रस्तुत करने के लिए ऐसे विषयों को नहीं लिया जाता था जो कि निर्जीव हो। तात्पर्य यह है कि शिक्षण-पद्धति में जीवन लाने का प्रयास किया जाता था।

एथेन्स की शिक्षण-पद्धति की दूसरी विशेषता यह थी कि अध्यापक स्वयं आदर्श उपस्थित करता था। अध्यापक जिन बातों की आशा विद्यार्थियों से करता था, वे सभी बातें उसमें होती थी। इस प्रकार विद्यार्थियों के सामने एक जीवित उदाहरण होता था और वे अपने को उसी के अनुरूप बनाने का प्रयास करते थे। इस प्रयास में वे सभी क्रियायें सम्मिलित थीं जिनसे कि अनुभव प्राप्त होता था। कोई विद्यार्थी दूसरे के अनुभव पर अपना ज्ञान आधारित नहीं करता था वरन् वह उस अनुभव को स्वयं ग्रहण करता था। शिक्षा में अनुभव का सिद्धान्त कितना महत्त्वपूर्ण है, यह आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान सिद्ध कर चुका है। हमे यह देखकर हर्ष होता है कि प्राचीन यूनानी शिक्षा में करके सीखना और अनुभव प्राप्त करना शिक्षण-पद्धति के आवश्यक अंग थे। इसी तथ्य के आधार पर प्राचीन यूनान की दार्शनिक धारा का प्रवाह होता है। आजकल बेसिक शिक्षा में, जिसके जन्मदाता हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी थे, करके सीखने और अनुभव प्राप्त करने पर बल दिया जाता है। यह देख कर कभी यह विचार आ सकता है कि क्या हम प्राचीन युग में जा रहे हैं? बात प्राचीन युग में जाने की नहीं है। सच तो यह है कि प्रत्येक युग की एक देन होती है। वह देन सभी देश, काल और समाज के कल्याण के लिए होती है। यूनानी शिक्षा में 'करके सीखने का' सिद्धान्त एक ऐसी ही देन है जिसे कि हम आज काम में ला रहे हैं और शिक्षा के इतिहास में भी हम यह देखेंगे कि किस प्रकार इस सिद्धान्त को

समय समय पर छोड़ा और अपनाया गया।

शिक्षा-पद्धति में शिक्षक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से शिक्षक में चरित्र का होना आवश्यक था और साथ ही विद्यार्थियों के लिए वह एक मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक भी होता था। यह भी एक ऐसी बात है जिसे शिक्षा के इतिहास में समय-समय पर भुला दिया गया और फलस्वरूप शिक्षा का रूप तथा समाज भी बदला। अब हम प्राचीन यूनानी-शिक्षा का समाज पर प्रभाव देखेंगे जिससे कि हम शिक्षा की देन को समझ सकें।

समाज पर प्रभाव - यूनानी प्राचीन शिक्षा की दूसरी धारा जो एथेन्स में विकसित हुई, उसका यदि तत्कालीन समाज पर प्रभाव देखें तो हमें ज्ञात होगा कि व्यक्ति का विकास इस प्रकार किया गया कि वह समाज के हित में सहायक हो। जिस प्रकार स्पार्टा में व्यक्ति पूर्ण रूप से समाज के लिए होता था, उस प्रकार की व्यवस्था एथेन्स में न थी। एथेन्स के लोग व्यक्ति और समाज का विकास समान रूप से चाहते थे और दोनों की ओर समान रूप से ध्यान देते थे। यही कारण था कि एथेन्स में दर्शन, विज्ञान और कला आदि के विकास और प्रसार के लिए समुचित वातावरण मिला।

यूनानी शिक्षा के प्राचीन काल की दो धाराओं से परिचित हो जाने के पश्चात् हम प्राचीन यूनानी शिक्षा की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकते हैं। इन विशेषताओं के सम्बन्ध में साधारण रूप से कहा जा सकता है कि राज्य की रक्षा का प्रश्न प्रधान था। अतः शिक्षा भी राज्य के लिए योग्य सैनिक तैयार करने के लिए प्रदान की जाती थी। व्यक्ति के विकास के पीछे भी यही भावना

थी। जहाँ नैतिकता का प्रश्न था, वह परिस्थितियों पर आधारित थी। अपने देश के हित में जो बात हो वह नैतिक है, साधारणतः नैतिकता का यही अर्थ था। प्राचीन यूनानी समाज विकास के पथ पर था। इसलिए हम उसमें वह मानसिक और बौद्धिक श्रेष्ठता नहीं पाते जो कि नवीन यूनान में मिलती है। यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जायगा जब कि हम नवीन यूनानी शिक्षा पर विचार करेंगे। नवीन यूनानी शिक्षा एथेन्स की शिक्षा का विकसित रूप है क्योंकि नवीन यूनान का केन्द्र एथेन्स रहा है।

नवीन यूनानी शिक्षा

नवीन यूनानः पेरीक्लीज़ युग—नवीन यूनानी शिक्षा को समझने के लिए नवीन यूनान से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। प्राचीन यूनान, जो कि सोलन के विधान के फलस्वरूप फूला-फला था, नवीन यूनान की भूमिका तैयार कर सका। नवीन यूनान जो कि इतिहास में स्वर्णयुग का यूनान है, सभी दृष्टियों से उन्नति और गौरव के शिखर पर था। इस उन्नति और गौरव का श्रेय पेरीक्लीज़ को था, क्योंकि जिस प्रकार प्राचीन यूनान सोलन की देन था उसी प्रकार नवीन यूनान पेरीक्लीज़ की। इसीलिए यूनान के नवीन युग को पेरीक्लीज़ युग भी कहते हैं। पेरीक्लीज़ युग ईसा से ४५९—४३१ वर्ष पूर्व माना जाता है। इस युग की क्या विशेषता थी, इसे पेरीक्लीज़, के एक प्रसिद्ध भाषण के उद्धरण से जाना जा सकता है। पेरीक्लीज़ ने एक आदर्श नगर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये हैं जो इस प्रकार हैं:—

पेरीक्लीज़ के अनुसार नवीन यूनान—'सर्व प्रथम आदर्श नगर एक स्वतंत्र नगर है और इसका शासन जनता के लिए जनता द्वारा होता है। यह एक लोकतंत्र है। इसलिए शासन बहुजन द्वारा होता है, अल्पजन द्वारा नहीं। हमारा विधान सबके लिए समान रूप से न्याय की व्यवस्था करता है। ग़रीबी किसी की उन्नति में बाधा नहीं बन सकती। सबको अपनी योग्यता के अनुसार राज्य की सेवा करने का अधिकार है। हम योग्यता का सर्वत्र आदर करते हैं। हम अपनी इच्छानुसार कार्य

करते हैं और हमें यह देखकर प्रसन्नता होती है कि हमारे पड़ोसी भी अपनी इच्छानुसार कार्य कर रहे हैं। हमारे सामाजिक जीवन में श्रद्धा की भावना होती है और हम शासन तथा विधान को आदर की दृष्टि से देखते हैं, विशेषकर उस विधान को जो दुखियों, पीड़ितों की रक्षार्थ है। हम उन अलिखित नियमों का भी पालन करते हैं जिनके टूटने पर मनुष्य शर्म में डूब जाता है।

नवीन यूनान का मनुष्य—'हमारे यहाँ उत्सवों और खेल-कूद की व्यवस्था है। हमारा गार्हस्थ्य जीवन परिष्कृत है। हमारे दैनिक जीवन की खुशी उदासी को दूर करती है। हमारा नगर (एथेन्स) विशाल और विस्तृत है और संसार के सारे सुख हमारे लिए उपलब्ध हैं। हम विदेशियों को भगाते नहीं। कोई भी विदेशी अपनी इच्छानुसार आ सकता है और जा सकता है। यहाँ रहकर जितना ही वह सीखता है, उतना ही अच्छा होता है क्योंकि हमारा नगर युद्धकाल और शांतिकाल में एक-सा रहता है। एक शब्द में हमारा नगर आदर्श नगर है। यह सभी यूनानियों के लिए शिक्षा के समान है। देखिए उस मनुष्य को जिसे हम तैयार करते हैं। हम युवकों के साथ निर्दयता का व्यवहार शारीरिक विकास के लिए नहीं करते। हम उनका सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि उनमें सौंदर्य का प्रेम हो लेकिन साथ ही उनकी रुचि सरल हो। हम उनके मस्तिष्क का विकास बिना उनके मनुष्यत्व (manliness) की हानि के करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य सामाजिक कार्यों में अभिरुचि रखे और यदि उसकी अभिरुचि सामाजिक कार्यों में नहीं है तो उसे हम बेकार समझते हैं। हम इस बात की आशा करते हैं कि उसका विकास इस प्रकार होगा कि वह जाति के हित में उचित-अनुचित का निर्णय कर सके। हम उससे यह

आशा करते हैं कि वह यूनान में होनेवाले सभी कार्यों में दिलचस्पी रखे जिससे कि उसे दुनिया की सभी बातों का ज्ञान हो और वह अपने देश की सेवा के निमित्त सही कदम उठा सके।

यूनान का शिक्षालय एथेन्स—'कुछ लोगों का विचार है कि मनुष्य में अज्ञान के कारण साहस होता है और जब वे विचार करने लगते हैं, तब उनमें हिचकिचाहट पैदा हो जाती है। हम इससे सहमत नहीं हैं। हमारे विचार से वही मनुष्य वीर है जो जीवन के सुख और दुख को स्पष्ट रूप से समझता है, जो संकट को समझ कर ख़तरा उठाता है। संक्षेप में मैं एथेन्स को यूनान का शिक्षालय समझता हूँ और मैं यह ज़ोर देकर कहता हूँ कि आप को एथेन्स से प्रेम होना चाहिए।'

'प्रेम' शब्द को पेरीक्लीज़ ने बहुत बल देकर कहा था। इसका अर्थ यह था कि एथेन्स के लिए हमें जीना और मरना है।

ऊपर पेरीक्लीज़ के प्रसिद्ध भाषण के प्रधान अंशों का छायानुवाद दिया गया है। इसे पढ़कर हम नवीन यूनान का एक काल्पनिक चित्र बना सकते हैं। लेकिन जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात पेरीक्लीज़ ने कही वह थी एथेन्स के सम्बन्ध में। पेरीक्लीज़ ने एथेन्स को यूनान का शिक्षालय कहा। इसके पूर्व भाषण के आरम्भ में पेरीक्लीज़ ने यह भी कहा था कि एथेन्स सारे यूनानियों की शिक्षा है। पेरीक्लीज़ के ये दोनों कथन शिक्षा और समाज के सम्बन्ध की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उसने एथेन्स नगर-राज्य की व्यवस्था इस प्रकार की और ऐसे विधान बनाये कि यूनानी नागरिक जीवन-पर्यन्त शिक्षा ग्रहण करता था। इतना ही नहीं वह भावी नागरिकों के लिए आदर्श स्वरूप होता था। यही कारण था कि यूनान में एक नवीन युग आया और एक नया समाज बना।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—पेरीक्लीज़ के इस कथन के पश्चात् नवीन यूनान की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि इस ज्ञान के आधार पर नवीन यूनानी शिक्षा को हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। इसके लिए हम पहले यूनान की राजनीतिक परिस्थितियों को लेते हैं क्योंकि इनका प्रभाव यूनान पर बहुत पड़ा है।

नवीन यूनान के पूर्व छठी शताब्दी में क्लीस्थोनीज़ ने सोलन के विधान में परिवर्त्तन किया। इस परिवर्त्तन के फलस्वरूप नागरिक अधिकार बहुजन के हाथ में आ गया और इसके साथ ही उनके लिए उन्नति का द्वार भी खुल गया। इस प्रकार नवीन यूनान का जन्म हुआ और उसमें इतनी शक्ति आ गई कि उसने फारस के आक्रमणकारियों को युद्ध में हरा दिया। यह युद्ध केवल एक वर्ष तक (५००—४७९ ई० पू०) हुआ था। इसके बाद यूनान में लोकतन्त्र के विकास के लिए उपयुक्त अवसर आया। इसी समय वाणिज्य और व्यवसाय की भी प्रगति हुई। सभी वर्गों को उन्नति का अवसर मिलने लगा और नवीन यूनान में समृद्धि का प्रसार हुआ। ऐसे अवसरों पर दूसरे देश आक्रमण करने की सोचते हैं। लूट का माल पाने के लिए फारस ने फिर आक्रमण किया। इस आक्रमण का सामना एथेन्स के नेतृत्व में हुआ। सामना करने के लिए एथेन्स ने अन्य नगर-राज्यों को एक संस्था में सम्मिलित किया। इस संस्था का नाम डिलियन लीग रखा गया। इस बार फिर एथेन्स की विजय हुई। इस विजय ने नवीन यूनान को राजनीतिक महत्त्व प्रदान किया। इसे स्पार्टा कब देख सकता था? अतः एथेन्स और स्पार्टा में भी युद्ध हुआ। इस युद्ध का भयानक परिणाम हुआ। एथेन्स का राजनीतिक महत्त्व छिन गया और स्पार्टा

अपनी सैनिक शक्ति के बल से यूनान का सर्वश्रेष्ठ राज्य बन गया। इस सम्बन्ध में पुस्तक के आरम्भ में यूनान की 'सांस्कृतिक भूमिका' के अध्याय में लिखा गया है। अतः उसकी पुनरावृत्ति यहाँ अपेक्षित नहीं है।

सामाजिक परिस्थितियाँ—राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। फारस के साथ युद्ध की समस्या ने यूनान के नगर-राज्यों में एकता स्थापित की। यह यूनान के इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। अतः इस एकता से युद्ध में विजय तो हुई ही, पर साथ ही आपसी सम्बन्ध में भी प्रगाढ़ता आई। अब एथेन्स यूनान के नगर-राज्यों को सांस्कृतिक राजधानी बन गया। व्यापार की दृष्टि से भी एथेन्स का विकास हुआ। एथेन्स में ऐसे लोगों को बसने के लिए प्रोत्साहन दिया गया जो कला-कौशल जानते थे। युद्ध से बचे जहाजों को व्यापार में लगाया, उसके कारण एथेन्स की आर्थिक दशा में सुधार हुआ। इस प्रकार वाणिज्य और व्यवसाय की बड़ी उन्नति हुई। इसका प्रभाव समाज पर भी पड़ा। अब एथेन्स के समाज में विदेशियों का भी स्वागत होने लगा क्योंकि वाणिज्य और व्यवसाय के सिलसिले में बाहर से लोग आते थे और साथ ही वे एथेन्स के सांस्कृतिक जीवन में भाग भी लेते थे। ऐसी दशा में एथेन्स में विदेशी विद्वान् भी आने लगे और इन विद्वानों ने एथेन्स में शिक्षण कार्य शुरू किया। एथेन्स निवासियों ने विदेशी शिक्षकों को 'सोफिस्ट' की उपाधि दी। नवीन यूनान के समाज पर सोफिस्टों का बड़ा प्रभाव पड़ा है और इसे हम विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में देख सकते हैं। इन सोफिस्टों का वर्णन शिक्षा-संगठन के समय किया जायगा।

सांस्कृतिक जीवन—नवीन यूनान को सांस्कृतिक नवीनता

भी उल्लेखनीय है। इस काल के साहित्य में ऐसी समस्याओं का भी समाधान किया गया जो मनुष्य के जीवन में सुख-दुख का कारण बनती हैं। उदाहरण के लिए एक नाटक में यह समस्या उपस्थित की गई कि विजय का मूल्य क्या है? जब जीवन में सभी चीजें ग़लत हो जाती हैं, तब सही क्या है? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देते समय कवि ने कहा—जब सभी चीजें ग़लत हो रही हों, तब जीवन की सबसे बड़ी वस्तु 'मन की जीत' होती है। जब तक मन नहीं हारता, मनुष्य नहीं हारता। हमारे एक प्रसिद्ध कवि ने भी ठीक ही कहा है—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। अतः हम देखते हैं कि नवीन यूनान के साहित्य में आशा की गुंजार है और मनुष्य एक नये उत्साह से उठता है और आगे बढ़ता है।

यूनानी नाटकों में ट्रेजेडी की प्रधानता थी। उस समय के नाटककार ऐसे नाटक लिखते थे जिसमें शुभ द्वारा शुभ (good against good) का विरोध होता था। शुभ का विरोध अशुभ से होना स्वाभाविक है। लेकिन जब शुभ का विरोध शुभ द्वारा होता है तो वास्तव में दुःखान्त नाटक की रचना होती है। यूनानी नाटककारों ने ट्रेजेडी की रचना कर मनुष्य का ध्यान महान् समस्याओं की ओर आकर्षित किया।

लेकिन जब शांतिकाल आ गया और यूनानी समाज पर किसी संकट की संभावना न रही तो व्यक्ति में समाज के हित की भावना कम हो चली। अब एथेन्स में व्यक्तिवाद का उदय हुआ। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा को कर्त्तव्य से ऊँचा मानने लगा। इसके फलस्वरूप सुखान्त नाटकों की रचना हुई। दुःखान्त नाटकों में जहाँ देव पात्रों का वर्णन होता था, अब वहाँ सुखान्त नाटकों में मनुष्य की इच्छाओं और क्रियाओं का चित्रण होने लगा।

इसका प्रभाव यूनानी परम्परा पर भी पड़ा। प्राचीन संस्कृति के स्थान पर एक नयी संस्कृति का विकास हुआ जो व्यक्तिवादी थी। इस व्यक्तिवादी संस्कृति में न तो नैतिकता के प्रति निष्ठा ही रही और न कर्त्तव्य की भावना ही। व्यक्ति की इच्छा और व्यक्ति का स्वार्थ प्रबल हो गया। इस प्रकार प्राचीन यूनानी संस्कृति के सभी बंधन तोड़ दिये गये और एक नई व्यक्तिवादी, स्वच्छंद संस्कृति का विकास हुआ। इस परिस्थिति को देखकर सुकरात और प्लैटो को बड़ा दुःख हुआ था। इसलिए सुकरात ने कहा था, "वीर और सुंदर युवावस्था का उत्साह हमारे नगर से चला गया······जो अच्छी आदतों का केवल तिरस्कार ही नहीं करता वरन् उपहास भी करता है, वह शरीर के विकास की ओर कैसे ध्यान देगा ?" इसी सम्बन्ध में प्लैटो ने भी कहा था कि यदि आप किसी एथेन्सवासी से पूछें कि गुण अर्जित है या स्वाभाविक तो वह उपहास करेगा और कहेगा मैं तो जानता ही नहीं कि गुण क्या है ?

सुकरात और प्लैटो के ये कथन नवीन यूनान के सांस्कृतिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि जब समाज की यह दशा हो चली तो उसका प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ना स्वाभाविक था। फलतः नवीन यूनानी शिक्षा के उद्देश्य, पद्धति, संगठन आदि में परिवर्त्तन हुआ। इस परिवर्त्तन में सोफिस्टों ने भी बड़ा कार्य किया। अतः अब हमें सोफिस्टों के विषय में भी जान लेना चाहिए क्योंकि इन्हीं के आधार पर नवीन यूनानी शिक्षा का विकास हुआ।

सोफिस्ट शिक्षक—सामाजिक परिवर्त्तन और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति ने ऐसे शिक्षकों की माँग की जो कि प्रत्येक यूनानी को वैयक्तिक स्वार्थों और हितों के योग्य बनाते। प्राचीन एथेन्स

की शिक्षा में व्यक्ति और समाज में एक संतुलन-सा था। लेकिन अब व्यक्ति की प्रधानता थी। इसलिए शिक्षा भी केवल व्यक्ति की उन्नति की दृष्टि से होने लगी। इस प्रकार को व्यक्तिवादी शिक्षा के लिए नये ढंग के शिक्षकों की आवश्यकता हुई। ये नये शिक्षक सोफिस्ट कहे जाते थे।

'सोफिस्ट' शब्द के अर्थ होते हैं—ऐसा विचारक जो झूठ को तर्क द्वारा सच कहता है। इस प्रकार सोफिस्टों द्वारा यूनान में एक ऐसी तर्क प्रणाली का विकास हुआ जो सच को झूठ और झूठ को सच बना सकता था। व्यक्तिवाद में ऐसे तर्क की बड़ी आवश्यकता होती है। फलतः सोफिस्टों का नवीन यूनानी शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया। उन्होंने जिस प्रकार की शिक्षा दी उसके उद्देश्यादि पर भी विचार करना उचित होगा।

सोफिस्ट शिक्षा का उद्देश्य—सोफिस्ट शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था व्यक्तिवाद का विकास करना। अतः वे व्यक्ति के हित को समाज के हित से बढ़कर मानते थे। तात्कालिक सुख प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के ऊपर कोई नैतिक बंधन न था। उसकी नैतिकता तात्कालिक सुख प्राप्त करने पर ही निर्भर थी। इस प्रकार प्राचीन यूनान में बनी नैतिक धारणा में परिवर्त्तन करना भी सोफिस्ट शिक्षा का उद्देश्य था। संक्षेप में सोफिस्ट शिक्षा का उद्देश्य था—(१) व्यक्ति अपने को समाज से बढ़कर माने। (२) नैतिकता का विचार तात्कालिक सुख की दृष्टि से करे और (३) सांसारिक सुख को सर्वश्रेष्ठ सुख माने।

सोफिस्ट शिक्षा के विषय—उद्देश्य के अनुरूप सोफिस्ट शिक्षा में ऐसे विषयों को स्थान दिया गया जो कि व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का विकास करते थे। उदाहरण के लिए अब उन्हें ऐसे साहित्य और काव्य का अध्ययन करना पड़ता था जो व्यक्ति के

हित को समाज के हित से बढ़कर बताते थे। संगीत, गणित, विज्ञान और अर्थशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा भी इस रूप में दी जाने लगी कि आपस में सहयोग के स्थान पर व्यक्ति के स्वार्थ की प्रधानता हो गई। फलतः अब प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा के विषयों का अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अध्ययन करने लगा। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि शिक्षा का कोई विषय अपने में भला-बुरा नहीं है, वरन् उसकी अच्छाई या बुराई अध्ययन के तरीके पर निर्भर करती है। इसलिए सोफिस्ट शिक्षा के विषय जो प्राचीन यूनानी शिक्षा के समान थे, शिक्षण-पद्धति की भिन्नता के कारण परिवर्त्तित हो गये।

सोफिस्ट शिक्षा का संगठन—सोफिस्टों ने शिक्षा के संगठन की दृष्टि से प्राथमिक काल सात वर्ष से तेरह वर्ष की आयु तक, माध्यमिक काल चौदह से सोलह वर्ष तक और उच्च-शिक्षा काल सत्रह से अठारह वर्ष तक निश्चित किया। प्राथमिक काल में सोफिस्टों ने लिखने, पढ़ने, गणित और संगीत पर विशेष ध्यान दिया। शारीरिक व्यायाम का एक प्रकार से अभाव था क्योंकि व्यायाम की आवश्यकता व्यक्तिगत सुख की दृष्टि से नहीं रही। माध्यमिक काल में संगीत और साहित्य, व्याकरण और रेखा-गणित के विषय प्रधान थे। साथ ही माध्यमिक शिक्षा में भाषण-कला को भी स्थान दिया गया क्योंकि नवीन यूनान में भाषण-कला का बड़ा महत्त्व था। सभी लोग सुंदर भाषण करके अपना महत्त्व प्रदर्शित करना चाहते थे। व्यायाम और खेल-कूद भी होते थे। लेकिन इनका अब पहले जैसा महत्त्व नहीं रहा। संगीत के लिए नये नये कवियों के ऐसे गीत विद्यार्थियों को सिखाये जाने लगे जो सांसारिक सुखों की प्रशंसा और नैतिकता की अव-हेलना करते थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि प्राचीन यूनानी

आदर्शों का ह्रास और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्रसार होने लगा।

सैनिक शिक्षा का पतन—सोलह वर्ष के बाद यद्यपि सैनिक शिक्षा की व्यवस्था थी। लेकिन यह सैनिक शिक्षा केवल नाम मात्र की हो गई। अब सैनिक शिक्षा के समय भी साहित्य चर्चा होती। इस काल में जो साहित्यिक शिक्षा होती थी उसका उद्देश्य यह था कि बाहुबल के स्थान पर वाक्बल द्वारा किस प्रकार लोगों को अपने वश में करके स्वार्थ सिद्ध किया जाय। फलतः लच्छेदार भाषा का प्रयोग भी होने लगा। चूँकि उस समय समाज में अच्छा भाषण करने वाले का आदर होता था, इसलिए यूनानी युवक भाषण-कला का अभ्यास करने लगे। इसके लिए सोफिस्ट शिक्षक युवकों के एक समूह को एक साथ निश्चित स्थान पर शिक्षा देते थे। इस प्रकार नवीन यूनान में भाषण-कला की धूम मच गई और उच्च-शिक्षा एक प्रकार से भाषण-कला की शिक्षा हो गई। इसलिए व्यायामशालायें भी भाषण शालाओं में परिवर्तित कर दी गईं और भाषण-कला के अनेक शिक्षक भी उत्पन्न हो गये।

समाज पर प्रभाव—सोफिस्टों और उनकी शिक्षा का यूनानी समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। सोफिस्ट जिन्हें वे यात्री शिक्षक भी कहते थे, हर एक स्थान में जाकर शिक्षा देते थे। इनकी शिक्षा का ढंग यह था कि ये प्रत्येक वस्तु के विषय में निर्भय होकर प्रश्न करते और वे हर एक की खरी आलोचना करने को तैयार रहते थे। यूनान में जितने भी धार्मिक विश्वास अथवा संस्थायें थीं, उन सब के विषय में संदेह करना और उन पर विचार करना सोफिस्टों की विशेषता थी। सोफिस्टों की इस प्रवृत्ति का समाज पर प्रभाव पड़ा और लोगों में भी इस प्रकार की विचार

धारायें प्रवाहित होने लगीं। इसी काल में सुकरात, प्लैटो और अरस्तू जैसे विचारक और दार्शनिक भी हुए। इनके विचारों के सम्बन्ध में अगले अध्यायों में विचार किया जायगा। लेकिन यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रोटागोरस और प्रोडीकस जैसे प्रसिद्ध सोफिस्टों ने यूनान में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं जो कि लोकतंत्र को संकुचित करने लगीं और बाद में लोकतंत्र तो नाम मात्र का रह गया। ऐसे समय में सुकरात, प्लैटो और अरस्तू जैसे दार्शनिक हुए और इन लोगों ने यूनानी नैतिकता को सुधारने की चेष्टा की। सोफिस्टों के कारण जो एक प्रकार की अव्यवस्था फैल गई थी, उसी को ठीक करने का प्रयास इन विद्वानों ने किया। अतः इनके कार्य को भली भाँति समझने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें इनके जीवन की परिस्थितियों से परिचित होना पड़ेगा और इस दृष्टि से पहले सुकरात के जीवन और विचारों की विवेचना उचित होगी क्योंकि सुकरात, प्लैटो और अरस्तू से काल की दृष्टि से प्रथम है।

सुकरात और उसकी शिक्षा

(४६९ ई० पू०—३९९ ई० पू०)

सुकरात का प्रारम्भिक जीवन—सुकरात का जन्म एथेन्स में हुआ था। इनका जन्म वर्ष ४६९ वर्ष ईसा से पूर्व माना जाता है। सुकरात के पिता गरीब थे। इसलिए सुकरात की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध न कर सके। युवक होने पर सुकरात ने मूर्तिकार (Sculptor) का पेशा अपनाया। लेकिन इस पेशे में भी सुकरात का कोई विशिष्ट स्थान न था। वह एक साधारण कोटि का मूर्तिकार था। उसका विवाह भी एक ऐसी स्त्री से हुआ था जो बड़ी चालाक थी। विवाह हो जाने पर सुकरात कई बच्चों का पिता बन गया। मगर फिर भी उसका मन न तो अपने पेशे में लगता था और न बाल-बच्चों में ही। वह तो विद्वानों से मिलना चाहता था और उनसे बातें करना चाहता था। बात करते समय सुकरात अपने को अज्ञानी मान लेता और फिर प्रश्न करता था। इसी के आधार पर एक 'सुकराती पद्धति' विकास हुआ। इसके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेगें। लेकिन यहाँ हम सुकरात के रूप-गुण का वह वर्णन उपस्थित करना चाहते हैं जो उसके एक शिष्य एलकिबेडीज (Alcbiades) द्वारा किया गया है। इस वर्णन को पढ़ने से हमें सुकरात के विषय में पर्याप्त रूप से ज्ञात हो जाता है:—

सुकरात का रूप-गुण—'साथियों, अब मैं सुकरात की 'प्रशंसा' इस प्रकार करना चाहता हूँ जो कि उसे (सुकरात)

परिहास ज्ञात होगा, लेकिन वस्तुतः बात बिल्कुल सच होगी। सुकरात की सूरत उस देवता (Satyr) से मिलती है जिसका चेहरा मनुष्य का और शरीर बकरी का है।······जब हम किसी वक्ता का भाषण सुनते हैं तो उसका हम पर कोई प्रभाव नहीं होता। लेकिन जब हम सुकरात की बात दूसरे से भी सुनते हैं तो हम पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। और यदि मुझे शराबी समझा जाने का भय न होता तो मैं शपथ लेकर कह सकता कि सुकरात के भाषण ने हमें सदा प्रभावित किया है। भाषण सुनने पर मेरा हृदय गद्गद हो जाता है और मेरे नेत्रों से प्रसन्नता के आँसू बहने लगते हैं।

मैंने पेरीक्लीज और अन्य वक्ताओं के भाषण सुने हैं। मेरे विचार से वे अच्छे वक्ता हैं। लेकिन उनके भाषणों को सुनकर मेरे हृदय में वे भावनायें उत्पन्न नहीं हुई जो सुकरात के भाषण से होती हैं। सुकरात की बातों को सुनकर मैं अपने को धिक्कारता हूँ और कहता हूँ कि मुझे इस प्रकार का जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए। कई बार मैंने सोचा कि क्या ही अच्छा होता यदि सुकरात मर जाता। लेकिन यह मैं ही जानता हूँ कि उसकी मौत से मुझे खुशी होने के बजाय अपार दुःख होता।'

ऊपर दिये गये अवतरण से यह ज्ञात होता है कि सुकरात कितना प्रिय था और वह किस प्रकार युवकों की निश्चित धारणाओं को निर्दयता के साथ परिवर्त्तित करता था।

सुकरात की मूर्ति का जो अवशेष मिला है, उसे देखकर यह ज्ञात होता है कि उसमें सुंदरता नाम मात्र को भी न थी। उसका चेहरा गोल था और सिर के बाल उड़ गये थे। उसकी आँखें गहराई से देखती थीं और उसकी नाक चौड़ी और लम्बी थी। ऐसा

था सुकरात का स्वरूप जो कि यूनान का महान शिक्षक और दार्शनिक था।

ऐतिहासिक भूमिका—सुकरात और उसकी शिक्षा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व के यूनान के इतिहास से भली भाँति परिचित हो लें। ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व के एथेन्स में एक महान् परिवर्तन हुआ। यह परिवर्त्तन हमें परम्परागत विचारों के त्याग और नवीन बुद्धिवादी प्रवृत्ति में जो कि सोफिस्टों द्वारा प्रचारित की गई थी, दिखाई पड़ती है। इस सदी के आरम्भ में हम यह भी देखते हैं कि एथेन्स का सर्वप्रधान कार्य नगर-राज्यों का संगठन करके फारसी युद्ध में विजय प्राप्त करना था। यूनान के इतिहास में ऐसा संगठन पहले कभी नहीं हुआ था। अतः फारसी युद्ध में एथेन्स के नेतृत्व में ४६० ई० पू० विजय प्राप्त हुई। यह विजय माराथान के विजय के नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरे फारसी युद्ध में जो कि पहले युद्ध से दस वर्ष बाद हुआ, एथेन्स ने फिर विजय प्राप्त की। इस समय एथेन्स की नौ-सेना बड़ी मजबूत थी और उसका समुद्र पर बड़ा प्रभाव था। लेकिन स्थल-सेना स्पार्टा की ही सब श्रेष्ठ थी। पहले युद्ध में स्पार्टा ने एथेन्स के साथ मिलकर फारसी युद्ध में भाग लिया था। लेकिन दूसरे युद्ध में भाग नहीं लिया। इसका कारण यह था कि अब की बार फारसी युद्ध एशियाई यूनान में हो रहा था। यूरोपीय यूनान में इससे कोई खतरा नहीं था इसलिए स्पार्टा अलग रहा। स्पार्टा के साथ न देने पर भी एथेन्स की विजय हुई। दूसरे युद्ध में विजय के कारण एथेन्स सर्वश्रेष्ठ राज्य बन गया। इसी समय पेरीक्लीज़ का उदय हुआ और उसने एथेन्स की उन्नति के लिए बड़ा कार्य किया। एथेन्स के वैभव और गौरव में बड़ी वृद्धि हुई।

इसके बाद पेलोपोनेज़ियन (Peloponnesian) युद्ध ४३१ ई० पू० में छिड़ गया। इस युद्ध में लड़नेवाले एथेन्स और स्पार्टा के लोग थे। इस लड़ाई ने एथेन्स का पतन किया। ४२९ ई० पू० में पेरीक्लीज़ की मृत्यु हो गई। पेरीक्लीज़ की मृत्यु के बाद एथेन्स में अंधकार छा गया। इसी समय एथेन्स में बड़े ज़ोर का प्लेग फैला। इस प्लेग में हज़ारों आदमी मरे। लेकिन युद्ध जारी रहा। एथेन्स की नौ-सेना अब भी शक्तिवान थी। इसलिए एथेन्स ने स्पार्टा के एक साथी सीराक्यूज़ (Syracuse) को पकड़ने के लिए अपनी सेना भेजी। एथेन्स का यह प्रयास असफल रहा। इससे एथेन्स के लोगों में निराशा फैली और साथ ही उनमें मरने-मारने की भी प्रवृत्ति भी आ गई। अतः जब एथेन्स ने मेलोज़ द्वीप पर ४१६ ई० पू० में हमला किया और उसे जीता तो वहाँ के उन सभी लोगों को मौत के घाट उतार दिया जो युद्ध करने के योग्य थे; और जो युद्ध नहीं कर सकते थे उन्हें दास बना लिया। लेकिन अंत में एथेन्स की हार हुई और स्पार्टा की विजय। स्पार्टा एथेन्स की भाँति लोकतत्र का पोषक न था। वहाँ तो कुछ लोगों (Oligarchy) का शासन था। इसलिए जब स्पार्टा का एथेन्स पर अधिकार हुआ तो वहाँ लोकतंत्र के स्थान पर तीस व्यक्तियों का शासन स्थापित कर दिया गया। ये तीस व्यक्ति एथेन्स के इतिहास में तीस निर्दयी (Thirty tyrants) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन तीस व्यक्तियों का प्रधान क्रीटीयस (Critias) तथा उसके कुछ साथी सुकरात के शिष्य थे। इन्हें एथेन्स के लोग चाहते भी नहीं थे। इसलिए एक वर्ष बाद इनसे अधिकार छीन लिया गया। इसके बाद स्पार्टा की सलाह से फिर 'लोकतंत्रात्मक' शासन स्थापित किया। ऐसा करते समय यह निश्चय हो गया था कि एथेन्स में यदि राज्य का कोई शत्रु हो तो उससे बदला

न दिया जाय। यद्यपि यह बात तय हो गई थी, मगर फिर भी किसी न किसी बहाने उन लोगों को सजा दी जाती थी जिन्हें शासन का शत्रु समझा जाता था। सुकरात को भी इसी कारण मौत की सजा मिली थी क्योंकि वह ऐसे वातावरण में भी क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त करता था। वे विचार क्या थे, और सुकरात की शिक्षा कैसी थी, इसे अब हम ज्ञात करेंगे।

सुकराती शिक्षा का उद्देश्य—सुकरात की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था मनुष्य को वह योग्यता प्रदान करना जिससे कि वह अपने को जान सके। सुकरात कहा भी करता था—अपने को जानो (Know thyself)। 'अपने को जानो' जो कि सुकरात की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है, समझना कठिन है। वैसे तो अपने को सभी जानते हैं। लेकिन वास्तविक रूप से अपने को बहुत कम लोग जानते हैं। जो लोग अपने को जानते हैं उन्हें अपनी शक्तियों और दुर्बलताओं के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं होता। वे अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और विचारों का विश्लेषण भली भाँति कर सकते हैं। सुकरात यह नहीं चाहता था कि लोग बिना समझे बूझे किसी विचार या सिद्धान्त को अपनायें। जब लोग बिना विचार किये किसी बात को स्वीकार कर लेते हैं, तो उनसे भूल हो जाना अथवा कुरीतियों का प्रसार होना स्वाभाविक है। अतः सुकरात ने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए लोगों को विचार करने की शक्ति या अपने को जानने की योग्यता प्रदान करना चाहा। दूसरे शब्दों में सुकरात की शिक्षा का उद्देश्य था मनुष्य को जीवन का वास्तविक पारखी बनाना। जीवन का वास्तविक पारखी वही मनुष्य हो सकता है जो कि मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्ध के सूक्ष्म भेदों को समझता है, सुख-

शांति के साथ रहना जानता है और बिना समझे-बूझे कोई बात नहीं कहता।

सुकराती शिक्षा के विषय—सुकरात ने मनुष्य को आत्म-ज्ञान प्रदान करने के लिए और उसके अज्ञान को दूर करने के लिए शिक्षा के विषयों को चुना। सुकरात शिक्षा के ऐसे विषय नहीं चाहता था जो केवल बौद्धिक विलास की सामग्री हों। अतः हम देखते हैं कि सुकरात अपने शिष्यों को उन बातों की शिक्षा देता था जो कि उनके दैनिक जीवन के दृष्टि से उपयोगी होते थे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सुकरात केवल दैनिक जीवन को ही महत्त्व देता था। वह उन गुणों का विकास भी करना चाहता था जो कि जीवन की सफलता के लिए आवश्यक थे। फलतः मनुष्य के व्यवहार और स्वभाव को समझने के लिए मनोविज्ञान, मानसिक विकास के लिए काव्य, संगीत और नृत्य, बौद्धिक विकास के लिए अंकगणित, और रेखागणित, और नैतिक विकास के लिए नीति-शास्त्र, आचार-शास्त्र और दर्शन जैसे विषय सुकराती शिक्षा में सम्मिलित थे। शारीरिक विकास को ओर ध्यान देना उस समय साधारण बात थी और यह हर एक यूनानी के लिए स्वाभाविक सा हो गया था कि वह अपने शारीरिक विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दे। लेकिन उस समय सबसे बड़ी समस्या लोगों में अज्ञान की थी क्योंकि सुकरात ने देखा कि लोग अनुमान के आधार पर तथा इंद्रिय संवेदन की सहायता से ही समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करते थे जब कि किसी समस्या का हल ज्ञान (Knowledge) में था। यह सत्य है कि किसी भी समस्या को बिना उसके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये, सुलझाना संभव नहीं है। इसके लिए सुकरात ने

लोगों को 'ज्ञान' प्रदान करने की कोशिश की और यह कार्य वह अपनी एक विशेष पद्धति से करता था। यह पद्धति शिक्षा के इतिहास में सुकराती पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है।

सुकराती पद्धति—सुकराती शिक्षा पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि कोई निष्कर्ष प्रदान नहीं किया जाता था, वरन् उस निष्कर्ष को विचार और तर्क करके प्राप्त किया जाता था। उदाहरण के लिए यदि कहा जाय कि न्याय की विजय होती है तो सुकरात इस कथन को स्वीकार नहीं करता था। वह अपने शिष्य से पूछता था—न्याय क्या है? विजय का क्या अर्थ है? इस प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर सुकरात राह चलते या बाजार में अपने शिष्यों को यह बताता कि उनकी धारणायें कितनी भ्रामक हैं और वे किस प्रकार बिना समझे-बूझे शब्दों का प्रयोग करते हैं। और सचमुच सुकरात के शिष्य यह अनुभव करते कि उन्होंने बिना विचार किये कोई बात कहते थे। इस प्रकार सुकरात अपनी पद्धति द्वारा सर्वप्रथम भ्रम को दूर करता था और फिर वह विचार द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचता था। उसकी शिक्षा की पद्धति में भाषण देना न था। सुकरात तो एक अज्ञानी की भाँति प्रश्न करता था और प्रश्नोत्तर की शैली में किसी विषय के सम्बन्ध में उसके शिष्य ज्ञान प्राप्त करते थे। इससे यह हुआ कि सुकरात के शिष्यों को किसी भी विषय के सम्बन्ध में भ्रम न था। उन्हें स्पष्ट और वास्तविक ज्ञान अपने अनुभव, विचार और तर्क की सहायता से प्राप्त होता था।

समाज पर प्रभाव—लेकिन उसकी इस पद्धति को वे लोग नापसन्द करते थे जो पुराने विचारों के थे। उनका कथन था कि सुकरात यूनान के नवयुवकों का पतन कर रहा है और देव-

ताओं के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर रहा है। सुकरात का मज़ाक भी उस समय के प्रसिद्ध कवि अरिस्टोफनीज़ (Aristophanes) ने अपनी रचना 'बादल' (Clouds) में उड़ाया था। इस प्रकार सुकरात का विरोध वे लोग करते थे जो कि पुराने विचारों के थे। उन्होंने शासन द्वारा सुकरात को अपराधी भी घोषित कराया और उसको मृत्यु-दंड दिया गया। सुकरात को जब न्यायालय में उपस्थित होना पड़ा, उस समय का वर्णन उसके प्रिय शिष्य प्लैटो ने अपनी पुस्तक 'माफ़ी' (Apology) में किया है। इस पुस्तक में प्लैटो ने सुकरात पर लगाये गये अपराधों और उसके दिये उत्तरों का सुंदर वर्णन किया है। सुकरात अपनी मृत्यु के समय सत्तर वर्ष का था और उसका शिष्य प्लैटो अट्ठाईस वर्ष का। सुकरात पर चलाये गये मुकदमें का प्लैटो पर गंभीर प्रभाव पड़ा। इसका अध्ययन हम प्लैटो से परिचय प्राप्त करते समय करेंगे। लेकिन सुकरात ने अपने जीवन और मृत्यु द्वारा समाज की भी बड़ी सेवा की। उसने उस नैतिक पतन को प्रायः रोका जो सोफिस्टों के कारण आरम्भ हो गया था। सुकरात ने यूनानी युवकों को आत्म-ज्ञान (Know thyself) का संदेश देकर अपने ऊपर निर्भर होना सिखाया। इस प्रकार सुकरात की शिक्षा का समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा। जहाँ तक सुकराती शिक्षा पद्धति का प्रश्न है, उसका सभी विषयों के अध्ययन में व्यवहार नहीं किया जा सकता था। यह पद्धति उसी विषय के अध्ययन में सहायक और उपयोगी थी जिसका कोई अनुभव या पूर्वज्ञान होता था। लेकिन जिस विषय का पूर्वज्ञान न हो उसके सम्बन्ध में प्रश्न करना ही व्यर्थ है। इसलिए गणित और विज्ञान जैसे विषयों में अनुभव और प्रयोग आवश्यक है न कि सुकराती पद्धति। मगर फिर भी सुकरात और उसकी शिक्षा का तात्कालीन

समाज पर जो प्रभाव पड़ा वह स्थायी था और आज भी जब शिक्षा में अनुभव और आत्मज्ञान की बात आती है तो हमें सुकरात का स्मरण हो आता है, क्योंकि इन विचारों का वही जन्मदाता और पोषक था और इसीके लिए सुकरात जिया और मरा ।

प्लैटो और उसकी शिक्षा

(४२० ई० पू०—३४८ ई० पू०)

प्लैटो का परिचय—यूनान का दूसरा प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री प्लैटो था। प्लैटो का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था। उसे जन्मकाल ही से सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं। वह देखने में बहुत ही सुन्दर था और उसका शरीर भी बहुत ही बलिष्ठ था। उसका नाम 'प्लैटो' इसलिए पड़ा कि उसके कन्धे चौड़े थे। उसने सैनिक-शिक्षा भी प्राप्त की थी और उसकी गणना यूनान के श्रेष्ठ सैनिकों में थी। इस प्रकार का व्यक्ति एक दार्शनिक होगा यह आशा नहीं की जा सकती थी। लेकिन जब प्लैटो सुकरात से मिला तो उसके जीवन में महान् परिवर्तन आ गया। सुकरात के प्रश्नोत्तर की प्रणाली का प्रभाव प्लैटो के मस्तिष्क पर पड़ा और इसीलिए वह अपने गुरु सुकरात का भक्त बन गया। एक बार प्लैटो ने कहा था—'मैं ईश्वर को इसलिए धन्यवाद देता हूँ कि उसने हमें जंगली न बना कर यूनान में जन्म दिया, दास न बना कर स्वतंत्र बनाया, स्त्री न बना कर पुरुप बनाया और सबसे बढ़ कर यह कि उसने मुझे सुकरात के युग में पैदा किया।' इससे बढ़ कर सुकरात की क्या प्रशंसा हो सकती थी?

प्लैटो में परिवर्तन—सुकरात को जब मौत की सज़ा मिली, उस समय प्लैटो अट्ठाईस वर्ष का था। उसे यह देख कर महान आश्चर्य और दुःख हुआ कि सुकरात जैसे विद्वान्, शिक्षक और दार्शनिक को यूनान की लोकतन्त्र द्वारा मृत्युदण्ड दिया

गया। इसलिए प्लैटो ने सोचा कि लोकतंत्र धोखे की टट्टी है। जब तक मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर हर एक बात को समझने की शक्ति नहीं रखता तब तक लोकतंत्र असफल रहेगा। इसलिए एक नया मार्ग ढूँढ़ना होगा और एक आदर्श समाज (Utopia) का निर्माण करना होगा।

प्लैटो का भ्रमण—सुकरात के ऊपर जब मुकदमा चल रहा था, उस समय प्लैटो ने उसकी पैरवी में बड़ी सहायता की थी। इस प्रकार प्लैटो भी सुकरात के साथ विरोधियों की आँख में खटकने लगा। इसलिए जब सुकरात की मृत्यु हो गई तब प्लैटो के मित्रों ने उससे कहा कि इस समय उसका एथेन्स में रहना उचित नहीं है। मित्रों की राय से प्लैटो विदेश भ्रमण के लिए निकल पड़ा। वह कहाँ कब गया, इसके सम्बन्ध में मतभेद है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वह सर्वप्रथम मिश्र देश में गया था। वहाँ जाकर उसने मिश्र के विद्वानों से भेंट की। बातचीत करने पर उसे मालूम हुआ कि मिश्र के लोग एथेन्स की सभ्यता और संस्कृति के बारे में कुछ नहीं जानते। मिश्र से प्लैटो सिसली गया और फिर वहाँ से इटली। इटली में प्लैटो ने उस शिक्षालय में कुछ समय व्यतीत किया जिसका संस्थापक पाइथागोरस था। यहाँ पर प्लैटो ने देखा कि कुछ लोग सादा जीवन व्यतीत करते हैं और सम्पूर्ण साधना के साथ अध्ययन करते हैं।

एथेन्स में पुनरागमन—कहते हैं कि प्लैटो हिन्दुस्तान भी आया था और यहाँ आकर उसने हिन्दू दर्शन और धर्म का अध्ययन भी किया था। बारह वर्ष तक देश-देश का भ्रमण करके और विभिन्न लोगों से मिल कर प्लैटो ने अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त किया और फिर वह एथेन्स लौट आया। जब वह एथेन्स

में आया तो उस समय उसकी अवस्था चालीस वर्ष की हो गई थी। उसमें अब युवाकाल का वह उत्साह न था जो किसी समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने में बाधक होता है। अब वह इतना विद्वान् बन गया था कि किसी भी समस्या पर स्पष्ट रूप से अपने मार्मिक विचार व्यक्त कर सकता था। उसमें एक दार्शनिक और एक कवि की अपार प्रतिभा थी। इसलिए उसने जो कुछ लिखा उसे स्पष्ट रूप से समझने में कठिनाई होती है। मगर फिर भी विद्वानों ने प्लेटो के विचारों का अध्ययन किया है।

प्लैटो का रिपब्लिक—प्लैटो की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' है। इस पुस्तक में प्लैटो के सभी विचार प्रस्तुत हैं। क्या धर्म, क्या दर्शन, क्या शिक्षा, क्या समाज और क्या राजनीति सभी विषयों पर प्लैटो के मत 'रिपब्लिक' पुस्तक में मिलते हैं। इसीलिए अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान इमर्सन का कथन है कि प्लैटो दर्शन है और दर्शन प्लैटो। साथ ही इमर्सन ने कुरान के सम्बन्ध में उमर के वाक्य को भी 'रिपब्लिक' की श्रेष्ठता दिखाने के लिए किया है। उमर का कथन था कि सभी पुस्तकालयों में आग लगा दो क्योंकि उनका तथ्य कुरान में निहित है।

रिपब्लिक पुस्तक वार्तालाप की शैली में लिखी गई है। इसका आरम्भ एक वादविवाद से होता है। इस वादविवाद में प्लैटो के दो भाई ग्लाकान (Glaucon) और एडीमान्टस (Adeimantus) तथा थ्रासीमेकस (Thrasymachus) नामक सोफिस्ट उपस्थित थे। यह वादविवाद एथेन्स के एक धनी व्यक्ति सेफालस (Cephalus) के घर पर हो रहा था और

प्लैटो ने एक प्रश्न सुकरात से कराया। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्लैटो ने वार्तालाप की शैली में पुस्तक लिखते समय अपने गुरु सुकरात को प्रधान प्रश्नकर्त्ता का स्थान दिया था। अतः सुकरात ने सेफालस से प्रश्न किया, "धन से तुम्हें सबसे बड़ी कौन सी वस्तु प्राप्त हुई ?" सेफालस ने कहा, "धन की सहायता से मैं सचाई और न्याय का जीवन व्यतीत करता हूँ।" इस पर सुकरात ने सेफालस से पूछा, "न्याय क्या है ?" और इस प्रकार सुकरात उन सभी परिभाषाओं को ग़लत साबित करता है जो उसके सामने उपस्थित की जाती हैं। सुकरात का यह तरीका वादविवाद में उपस्थित सोफिस्ट को क्रोधित कर देता है और वह सुकरात को जो उत्तर देता है उससे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि यूनान के नैतिक पतन के लिए सोफिस्ट किस सीमा तक उत्तरदायी थे।

क्रोधित सोफिस्ट ने कहा,—"लो सुनो, मैं कहता हूँ जिसकी लाठी उसकी भैंस। न्याय बलवान के स्वार्थ का नाम है। एक राज्य में जो नियम बनाए जाते हैं चाहे वे लोकतन्त्रात्मक या एकाधिकार के द्योतक क्यों न हों, उनका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि वे शासन करनेवालों के स्वार्थ की रक्षा करें। जब शासकों के स्वार्थ का किसी प्रकार अपहरण होता है तो न्याय के नाम पर दण्ड दिया जाता है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि सोफिस्टों ने यह प्रचार किया कि न्याय स्वार्थरक्षा का दूसरा नाम है और नैतिकता कमजोरों की लाठी। प्लैटो ने इस प्रकार के विचारों का प्रचार रोका और उसने समझाया कि न्याय एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध और सामाजिक संगठन पर निर्भर करता है। इसी दृष्टिकोण से उसने एक आदर्श समाज (Utopia) की कल्पना की। उसने इसी आदर्श समाज के विकास के लिए

शिक्षा के सिद्धांतों की विवेचना की है। लेकिन इसके पूर्व कि हम प्लैटो के शिक्षा सिद्धान्तों का वर्णन करें, उसके मूल विचारों से परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा। प्लैटो ने राजनीतिक समस्या और साथ ही मनुष्य की मनोवैज्ञानिक समस्या पर विचार किए हैं।

प्लैटो के राजनीतिक विचार—राजनीतिक समस्या के सम्बन्ध में प्लैटो का विचार था कि कोई भी शासन हो वह तभी समाप्त होता है जब कि उसमें किसी विचार की अति हो जाती है। उदाहरण के लिए लोकतन्त्रात्मक शासन में लोकतन्त्र की अति हानिकर है। उसका विचार था कि लोकतन्त्र का मुख्य उद्देश्य सबको समान अवसर प्रदान करना है। समान अवसर पाकर योग्यतानुसार मनुष्य अपना विकास कर सकता है। लेकिन उस समय लोकतंत्र के सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित थी कि सभी को राज्य में किसी भी पद को प्राप्त करने की आज्ञा है। प्लैटो का विचार था कि बाह्यरूप से इस प्रकार की व्यवस्था अच्छी मालूम पड़ती है, लेकिन बिना योग्यता के कोई अच्छा शासक कैसे बन सकता है ? जब कोई बीमार पड़ता है तब हम इलाज के लिए किसी वैद्य को बुलाते हैं। लेकिन जब शासन का प्रश्न उपस्थित होता है तब हम शासक की योग्यता को भूल जाते हैं और यह समझने लगते हैं कि सभी व्यक्ति अच्छे शासक हो सकते हैं। वास्तव में प्लैटो के अनुसार उस समय सबसे बड़ी राजनीतिक समस्या यह थी कि किस प्रकार योग्य व्यक्तियों का चुनाव किया जाय और उन्हें कुशल शासक बनाया जाय।

आदर्श समाज का व्यक्ति—प्लैटो की यह दृढ़ धारणा

थी कि आदर्श समाज में आदर्श व्यक्ति का भी होना आवश्यक है। इसलिए व्यक्ति को समझना चाहिए, क्योंकि जैसा व्यक्ति होता है वैसा ही शासन होता है। जब व्यक्ति के चरित्र में परिवर्तन होता है तब शासन में भी परिवर्तन आ जाता है। इसलिए शासन को सुधारने की दृष्टि से व्यक्ति का सुधार अपेक्षित है और व्यक्ति का सुधार तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जाता। आजकल तो मनोविज्ञान काफी विकसित हो चुका है। लेकिन उस समय प्लैटो ने मनुष्य के मनोविज्ञान के सम्बन्ध में जो बातें कहीं वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

व्यक्ति का मनोविज्ञान—प्लैटो का विचार था कि मनुष्य के व्यवहार के तीन स्रोत हैं। पहला स्रोत इच्छा का है, दूसरा भावना का और तीसरा ज्ञान का। इच्छा (Desire) को स्पष्ट करते हुए प्लैटो ने कहा है कि इसके साथ हम क्षुधा, आवेश और मूल प्रवृत्तियों को भी ले सकते हैं। शरीर में इच्छा नाभि के निकट निवास करती है और वह प्रधान रूप से कामशक्ति की द्योतक है।

भावना (Emotion) के अन्तर्गत प्लैटो साहस, उत्साह और आकांक्षा को मानता था और शरीर में उसका स्थान हृदय था जहाँ से मनुष्य के सभी कार्यों की प्रेरणा प्रवाहित होती थी। ज्ञान (Knowledge) के अन्तर्गत् प्लैटो बुद्धि, विचार और तर्क को मानता था और इसका निवास स्थान मस्तिष्क था। इस प्रकार मनुष्य इच्छा भावना और ज्ञान या भारतीय शब्दावली में तृष्णा, धृति और विवेक का मिश्रित रूप था। लेकिन मनुष्य के इन तीनों मनोवैज्ञानिक शक्तियों की मात्रा समान नहीं होती। जिस व्यक्ति में इच्छा या तृष्णा की प्रधानता होती है

वह सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है। ऐसे लोग वाणिज्य और व्यवसाय में सफल होते हैं। जिनमें भावना या धृति प्रधान होती है उनमें असीम उत्साह होता है और वे किसी भी कार्य को पूर्ति में साहस और लगन के साथ लग जाते हैं। जिन व्यक्तियों में ज्ञान अथवा विवेक की प्रधानता है वह प्रत्येक वस्तु को भलीभाँति समझते हैं और उनके लिए दुःख-सुख तथा हानि-लाभ में कोई भेद नहीं होता। वे अपना समय सत्य की खोज में व्यतीत करते हैं और अपने जीवन को दीप की भाँति ज्ञान का प्रकाश प्रसारित करने के लिए जलाते हैं। उनका ज्ञान उनके जीवन का प्रकाश बन जाता है और वे मानव जाति का पथ-प्रदर्शन करते हैं।

लेकिन वास्तविक समस्या तो यह है कि व्यक्ति में इच्छा भावना और ज्ञान का संतुलित विकास किस प्रकार किया जाय? यदि इनमें से किसी एक की भी कमी हो जाती है तो व्यक्ति का विकास नहीं हो पाता। अतः व्यक्ति के संतुलित विकास के लिए प्लैटो ने जो मार्ग निकाला वह हम उसके शिक्षा-सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्लैटो का शिक्षा-सिद्धान्त उसके दार्शनिक विचारों की छाया है। इसलिए हम प्लैटो के शिक्षा-सिद्धांत में उसके दार्शनिक विचारों का भी प्रभाव पाएँगे।

प्लैटो की शिक्षा के उद्देश्य—प्लैटो की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आदर्श समाज के लिए ऐसे व्यक्तियों को उत्पन्न करना था जो किसी कार्य को सहृदयता और विवेक से करें।* दूसरे

---

* ... Effective individual action implies that desire, though warmed with emotion, is guided by knowledge ......Will Durant.

शब्दों में प्लैटो शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार निश्चित करना चाहता था कि व्यक्ति में गुण का विकास हो। उसका विश्वास था कि गुणी व्यक्ति ही नैतिक जीवन व्यतीत कर सकता है। मनुष्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते समय प्लैटो ने इच्छा, भावना और ज्ञान के अनुसार मनुष्य के गुणों की ओर संकेत भी किया था। इच्छा से सम्बन्धित गुण आत्मसंयम है। बिना आत्म-संयम के मनुष्य अपनी इच्छा अथवा तृष्णा का दास हो जाता है। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य आत्मसंयम का विकास भी होना चाहिए। भावना जिसका कि सम्बन्ध हृदय से है उसका प्रधान गुण साहस और सहनशीलता है। बिना साहस, धैर्य और सहनशीलता के मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए व्यक्ति में इन गुणों का भी विकास होना चाहिए। मनुष्य के ज्ञान से सम्बन्धित गुण विवेक और विचार है। अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को विचारशील और विवेकी बनाना होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा के उद्देश्य में शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास का उल्लेख होता है। इसीके समान प्लैटो की शिक्षा का भी उद्देश्य है। जब शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक गुणों का समुचित विकास हो जाता है, तभी व्यक्ति नैतिक जीवन के अनुकूल होता है। यही प्लैटो की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था।

सुकराती उद्देश्य से तुलना—प्लैटो की शिक्षा के उद्देश्य की तुलना यदि सुकरात की शिक्षा के उद्देश्य से की जाय तो हमें ज्ञात होगा कि दोनों नैतिक जीवन को महत्त्व प्रधान करते थे। जिस प्रकार सुकरात 'अपने को जानो' अथवा 'आत्म-ज्ञान' पर बल देता था, उसी प्रकार प्लैटो ने भी व्यक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक माना। लेकिन अंतर केवल यह रहता था कि जहाँ सुकरात ने ज्ञान की आवश्यकता की ओर संकेत किया और कुछ व्यक्तियों

को इसके योग्य बनाया, वहाँ प्लैटो ने इसकी पूरी छान-बीन की और इसके फलस्वरूप ज्ञान के रूप को निश्चित किया। प्लैटो ने उस ज्ञान की पूरी व्याख्या की जिसे प्राप्त करना व्यक्ति की शिक्षा का उद्देश्य था। उसके अनुसार वस्तु और विचार का घनिष्ठ सम्बन्ध था। व्यक्ति का विचार जितना ही स्पष्ट होगा, उतना ही अधिक उसे वस्तु का स्पष्ट ज्ञान होगा। इसलिए प्लैटो के अनुसार विचार ही सब कुछ था। यदि मनुष्य में स्पष्ट और पूर्ण विचार की शक्ति है तो वह सफल, श्रेष्ठ और नैतिक हो सकता है। इसी 'विचार' के सम्बन्ध में प्लटो ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है। इसे भली भाँति समझने के लिए 'पश्चिमी-दर्शन' की पुस्तक का अध्ययन अपेक्षित है। यहाँ हमें केवल इतना स्मरण रखना है कि प्लैटो वस्तु (Object) से बढ़कर विचार (Idea) को महत्त्व प्रदान करता था और यह सत्य भी है। जब हम कहते हैं कि यह मेज़ है तो इस कथन के पीछे 'मेज़' का विचार (Idea) है। यदि किसी जंगली को मेज़ दिखाई जाय तो वह नहीं बता सकता कि उस चीज़ का क्या नाम है। इसीलिए कहा जाता है कि संसार भी म नुष्य के विचार में ही निहित है। इसी तथ्य के समान भारतीय दार्शनिकों ने 'माया' का उल्लेख किया है। अतः इन सब बातों का अध्ययन किसी 'दर्शन' पुस्तक की सहायता से किया जा सकता है। यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

शिक्षा के विषय—प्लैटो ने शिक्षा के उद्देश्य के अनुरूप शिक्षा के विषय भी निर्धारित किये। दैनिक जीवन में कुशलता के लिए शिक्षा में कृषि और व्यापार सम्बन्धी विषयों को स्थान दिया। ऐसा प्लैटो ने इसलिए किया कि उस समय एथेन्स में कृषि और व्यापार प्रधान धंधे थे और इन्हीं के द्वारा एथेन्स-

वासी धन एकत्रित करते थे। इसलिए यह आवश्यक था कि शिक्षा में कृषि और व्यापार जैसे विषय भी रखे जाँय। मनुष्य में सौंदर्य-बोध उत्पन्न हो और उसमें नैतिकता का विकास हो, इसके लिए प्लैटो ने शिक्षा के विषयों में संगीत, नृत्य, कविता को स्थान दिया। स्पष्ट विचार में गणित के अध्ययन से सहायता मिलती है। इसलिए शिक्षा के विषयों में गणित को स्थान ज्ञान की वृद्धि के लिए दिया गया। इसके साथ साथ प्लैटो व्यक्ति को आदर्श समाज के योग्य बनाने के लिए नागरिक जीवन की बातों को भी शिक्षा के विषयों में स्थान देता था। इस प्रकार प्लैटो ने शिक्षा के ऐसे विषय निर्धारित किये जो आदर्श समाज के योग्य व्यक्तित्व उत्पन्न करने में सहायक होते थे।

शिक्षा-संगठन और पद्धति—प्लैटो चाहता था कि उसकी कल्पना के आदर्श समाज के लिए योग्य नागरिक तैयार हों। इस दृष्टि से उसने शिक्षा के संगठन में यह व्यवस्था की कि जन्म से लेकर दस वर्ष तक बालकों को उनके माता-पिता के प्रभाव से मुक्त रखा जाय। उसका विचार था कि यदि वे अपने माता-पिता के सम्पर्क में आएँगे तो उनमें भी उनके दोष उत्पन्न हो जायेंगे। इसलिए बालकों का अपने माता-पिता से अलग रहना आवश्यक था।

प्रथम दस वर्ष में व्यायाम—प्रथम दस वर्ष में बालकों को व्यायाम और खेल-कूद की शिक्षा विशेष रूप से देने के पक्ष में प्लैटो था क्योंकि उसके अनुसार मनुष्य को रोगी नहीं रहना चाहिए। प्लैटो चाहता था कि आदर्श समाज के नागरिक स्वस्थ हों। अस्वस्थ होना वह लज्जाजनक समझता था। अतः उसका दृढ़ विश्वास था कि आदर्श समाज के लिए स्वस्थ व्यक्तियों का होना

अनिवार्य है और इसके लिए शिक्षा के आरम्भ में शारीरिक विकास की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य विषयों की अवहेलना की जाय। हमें शिक्षा के उन विषयों की ओर भी ध्यान देना है जिनके द्वारा साहस और मृदुल स्वभाव का विकास होता है। इसके लिए संगीत और नृत्य की शिक्षा आवश्यक है क्योंकि संगीत के द्वारा मानसिक विकास होता है जो कि चरित्र-निर्माण में सहायक है। जिस व्यक्ति को संगीत और नृत्य का ज्ञान नहीं है, उस व्यक्ति के चरित्र में त्रुटि होती है। इस प्रकार नृत्य और संगीत मानसिक विकास के साधन थे और साथ ही शारीरिक विकास में भी सहायक होते थे।

शिक्षा में स्वतंत्रता—लेकिन शारीरिक व्यायाम और संगीत की अधिकता अच्छी नहीं है। प्लैटो का विचार था कि शिक्षा में अधिक व्यायाम मनुष्य को जंगली बना देता है और अधिक संगीत इतना कोमल कि वह किसी काम का नहीं रह जाता। इसलिए सोलह वर्ष की आयु के बाद विद्यार्थी को संगीत का व्यक्तिगत अध्ययन समाप्त कर देना चाहिए और केवल सामूहिक संगीत में भाग लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्लैटो का यह विचार था कि संगीत का समन्वय अन्य विषयों से भी होना चाहिए। उदाहरण के लिए गणित, विज्ञान और इतिहास की शिक्षा सुंदर गीतों द्वारा रोचक बनाई जा सकती है। लेकिन साथ ही इसका भी ध्यान रखना है कि इन विषयों की शिक्षा किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं देनी चाहिए। प्लैटो का यह निश्चित मत था कि शिक्षा में किसी प्रकार की बाध्यता अच्छी नहीं क्योंकि एक स्वतंत्र व्यक्ति को शिक्षा में भी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। जो शिक्षा बाध्य होकर ग्रहण की

जाती है उसका मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए किसी प्रकार की बाध्यता का सहारा न लेकर प्रारम्भिक शिक्षा को रोचक बनाना चाहिए। जब शिक्षा रोचक होगी तो बालक का विकास स्वाभाविक रूप से हो सकेगा। प्लैटो का यह सिद्धान्त आज भी कितना सत्य है। वास्तव में यह सिद्धान्त आधुनिक शिक्षा का प्राण है।

युवकों की शिक्षा—प्लैटो का विचार था कि जब बालक बीस वर्ष का युवक बन जाय, उस समय उसकी कठिन परीक्षा होनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि उसमें उच्च शिक्षा की प्रतिभा है या नहीं। इस कठिन परीक्षा में युवक की सहनशीलता और साहस, योग्यता और आरम्भशक्ति की जाँच होती थी। यदि उसमें कमी होती थी तो उसे उच्च शिक्षा न देकर वाणिज्य-व्यवसाय, कृषि इत्यादि कार्यों में लग जाना पड़ता था। जो युवक प्रतिभाशाली और योग्य होते, उन्हें उच्च-शिक्षा दी जाती थी। यह उच्च-शिक्षा दस वर्ष तक दी जाती। इस अवधि में युवक की शिक्षा इस प्रकार की होती कि उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो जाय। इस दस वर्ष के बाद दूसरी परीक्षा होती थी। जो इस परीक्षा में असफल होते उन्हें राज्य की सेना में अथवा कार्यालय में अधिकारी पद प्रदान किये जाते थे। जो इस परीक्षा में सफल होते, उन्हें दर्शन का अध्ययन कराया जाता। तीस वर्ष की आयु के पहले युवकों को दर्शन की शिक्षा नहीं दी जाती थी क्योंकि प्लैटो का विचार था कि यदि युवकों को आरम्भ में ही दर्शन की शिक्षा दी जाय तो वे उसे मनोरंजन के लिए तर्क की सामग्री बना देते हैं और उनकी दशा कुत्ते के पिल्लों की भाँति हो जाती है जो प्यार से कपड़े फाड़ने लगते हैं।

दर्शन का अध्ययन—प्लैटो तीस वर्ष के इन युवकों को जो दूसरी परीक्षा में सफल होते थे, दर्शन की शिक्षा दो कारणों से देता था। प्रथम कारण यह था कि दर्शन के अध्ययन के द्वारा उनमें स्पष्ट रूप से सोच-विचार करने की क्षमता उत्पन्न हो और दूसरा कारण यह था कि वे योग्य शासक बनें। इस प्रकार प्लैटो आदर्श समाज के लिए योग्य शासक उत्पन्न करना चाहता था। अतः तीस वर्ष से पैंतीस वर्ष तक युवकों को दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करना पड़ता था। इसी काल में उन्हें तर्क करने और भाषण देने की योग्यता भी भली भाँति प्राप्त हो जाती थी। इसके पश्चात् वे राज्य के उच्च अधिकारी बना दिए जाते थे। पचास वर्ष की आयु तक शासन-कार्य करने के पश्चात् उन्हें 'अवकाश' मिलता था। अवकाश ग्रहण करने के बाद वे दार्शनिक सत्यों की खोज करने में अपना समय बिताते थे।

शिक्षा-संगठन का सारांश—ऊपर हमने प्लैटो की शिक्षा-संगठन और पद्धति में सामान्य रूप से विचार किया है। कुछ विद्वानों ने प्लैटो की प्रसिद्ध रचनाओं 'रिपब्लिक' और 'लॉज' का अध्ययन करके उसके शिक्षा-संगठन के स्वरूप को ज्ञात किया है। यहाँ हम उसका सारांश उपस्थित कर रहे हैं:—

(१) जन्म से प्रथम तीन वर्ष में बालक का पालन-पोषण इस प्रकार हो कि उसे पीड़ा और आनन्द का कम से कम अनुभव हो। साथ ही इस अवधि में बालक को किसी प्रकार से भयभीत न किया जाय। भय से कायरता उत्पन्न होती है।

(२) तीन वर्ष के बाद छः वर्ष तक बालक को पीड़ा और आनन्द का साधारण अनुभव होना चाहिए। उसे अच्छी आदतों की भी शिक्षा मिलनी चाहिए। उसे ऐसी राष्ट्रीय कहानियाँ

सुनानी चाहिएँ जिनके द्वारा उसमें राष्ट्र के प्रति श्रद्धा और आदर के भाव उत्पन्न हो और साथ ही आत्मनिर्भरता, सहनशीलता और साहस की भी शिक्षा उसे मिले।

(३) छः वर्ष के बाद बालकों को नृत्य, संगीत, कविता की शिक्षा मिलनी चाहिए। शारीरिक विकास के लिए खेल-कूद और व्यायाम, घुड़सवारी और मामूली हथियार चलाना भी सिखाना चाहिए। इसके अतिरिक्त गणित की भी शिक्षा इसी काल में आरम्भ हो जानी चाहिए। यह कार्य तेरह वर्ष की आयु तक चलता था।

(४) तेरह वर्ष के बाद सोलह वर्ष तक धार्मिक गीत, गणित तथा काव्य के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(५) सोलह वर्ष के बाद बीस वर्ष तक सैनिक शिक्षा की प्रधानता होनी चाहिए। युवकों को ऐसे व्यायाम की शिक्षा देनी चाहिए जो उनमें स्फूर्ति उत्पन्न करें।

(६) बीस वर्ष के बाद पहली कठिन परीक्षा। परीक्षा में सफल युवकों को उच्च-शिक्षा प्राप्त करना चाहिए और असफल युवकों को वाणिज्य व्यवसाय में लग जाना चाहिए।

(७) बीस वर्ष से तीस वर्ष तक युवकों को 'वैज्ञानिक अध्ययन' अर्थात् भिन्न-भिन्न वस्तुओं के आपसी सम्बन्ध को समझना पड़ता था।

(८) तीस वर्ष की आयु के बाद दूसरी परीक्षा। परीक्षा में सफल व्यक्तियों को तीस से पैंतीस वर्ष की आयु तक दर्शन, तथा भाषण-कला का अध्ययन करना पड़ता था। जो असफल हो जाते वे सेना में अथवा राज्य के कार्यालय में भर्ती हो जाते।

(९) पैंतीस वर्ष से पचास वर्ष तक उच्च अधिकारी पद पर आसीन होकर राज्य की सेवा करना।

(१०) पचास वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करके सत्य की खोज करना ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्लैटो ने ऐसा शिक्षा-संगठन बनाया कि उसमें व्यक्ति जीवन भर शिक्षा ग्रहण करता था और योग्यता के अनुसार कार्य करता था ।

स्त्री-शिक्षा—प्लैटो की शिक्षा व्यवस्था में बालक और बालिकाओं को समान रूप से शिक्षा मिलती थी, क्योंकि वह स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं मानता था । उसका यह दृढ़ विचार था कि पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी कार्य कर सकती हैं, यद्यपि उनमें पुरुषों की तुलना में शारीरिक बल कम है । इसलिए प्लैटो ने नारी-शिक्षा की कोई अलग व्यवस्था नहीं की और बालक-बालिकाओं को एक ही प्रकार की शिक्षा देने का विधान बनाया ।

समाज पर प्रभाव—प्लैटो की शिक्षा का समाज पर क्या प्रभाव हो सकता है ? इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें प्लैटो के आदर्श-समाज (Utopia) को याद रखना चाहिए । प्लैटो की शिक्षा के सिद्धान्त और विधान आदर्श समाज के लिए बनाये गये थे । साथ ही प्लैटो मनुष्य का विकास इस प्रकार करना चाहता था कि उसमें विवेक उत्पन्न हो । उसका यह भी विश्वास था कि लोकतंत्र का अर्थ होता है सबको उन्नति करने का समान अवसर देना और सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा शासन कराना । वह लोकतंत्र का अर्थ बहुमत नहीं मानता था । बहुमत को वह भेड़-बकरियों की व्यवस्था समझता था । इसलिए प्लैटो कुशल और ज्ञानी नागरिक बनाना चाहता था ।

शिक्षा और समाज की दृष्टि से प्लैटो की दूसरी देन यह थी कि उसने व्यायाम और संगीत की शिक्षा में संतुलन स्थापित किया

और शिक्षा को मनोवैज्ञानिक बनाया, यद्यपि उस समय मनोविज्ञान नाम का कोई विषय अलग से नहीं था, वरन् वह दर्शन का एक अंग था। इसलिए प्लैटो ने दार्शनिक अध्ययन द्वारा समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ाई जो भली भाँति सोच-समझ सकते थे। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि प्लैटो गणित को भी दर्शन का एक अंग मानता था। उसका विचार था कि गणित के द्वारा व्यक्ति स्पष्ट रूप से विचार कर सकता है और उसके नियम मनुष्य को दार्शनिक सत्य समझने में सहायक होते हैं। यही विचार कुछ आधुनिक दार्शनिकों का भी है जिनमें बर्टरैन्ड रसेल का नाम उल्लेखनीय है।

प्लैटो ने अपनी शिक्षा योजना द्वारा एथेन्सवासियों का नैतिक उत्थान करना चाहा। सोफिस्टों की शिक्षा का जो अहितकर प्रभाव पड़ा और उसके कारण जो अराजकता बढ़ी, उसे भी प्लैटो ने अपनी योजना द्वारा सुधारना चाहा। दर्शन-शास्त्र के अध्ययन द्वारा व्यक्ति को विवेकशील बनाया। इस प्रकार प्लैटो ने आनेवाले युग का मार्ग प्रशस्त किया। प्लटो के विचारों और सिद्धान्तों के प्रभाव शिक्षा के इतिहास में हमें स्पष्ट दिखाई देंगे और आज भी उसके सिद्धान्त उल्लेखनीय और अनुकरणीय हैं।

प्लैटो की त्रुटियाँ—जैसा कि हम जानते हैं, प्लैटो की कल्पना में एक आदर्श समाज—'यूटोपिया' था। उसी आदर्श समाज के निर्माण के लिए प्लैटो ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे ऐसे विचार हैं जिनसे सहमत होना सबके लिए सरल नहीं है। इसलिए उसमें त्रुटियाँ भी मिलती हैं। स्पष्ट है, कोई भी विचार हो जब तक उसे व्यवहार में न लाया जाय, तब तक वह पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। प्लैटो ने जो योजनायें बनाईं

उसे लोगों ने उसी समय अपनाया नहीं और न उसके अनुसार कार्य ही किया। फलतः प्लैटो के विचार केवल दार्शनिक रह गये और वे व्यावहारिक नहीं बनाये गये। यदि व्यवहार के द्वारा उन विचारों की परख होती तो यह संभव था कि प्लैटो उनमें कुछ सुधार कर सकता। जो भी हो, यह कहा जाता है कि प्लैटो के शिक्षा-सिद्धान्त में नियंत्रण अत्यन्त कठोर था और उससे व्यक्ति की स्वतंत्रता छिन जाती थी। दूसरी त्रुटि यह बताई जाती है कि प्लैटो ने राज्य को इतनी प्रधानता दी कि परिवार का कोई मूल्य ही नहीं रहा। तीसरी त्रुटि यह निकाली जाती है कि प्लैटो ने जो दार्शनिक शासकों की कल्पना की, वह अपूर्ण थी क्योंकि प्लैटो ने दार्शनिक योग्यता और नागरिकता में सुंदर सामंजस्य स्थापित नहीं किया।

प्लैटो में जो त्रुटियाँ निकाली गई हैं, उनका उत्तर दिया जा सकता है। लेकिन मुख्य बात यह है कि प्लैटो के विचार इतने गहन हैं कि उन्हें भली भाँति समझना सबके लिए संभव नहीं है। उन विचारों का जितना ही अध्ययन किया जाय, उतना ही अधिक ज्ञात होता है। इसलिए शिक्षा की दृष्टि से हमें प्लैटो के उन सिद्धान्तों को स्मरण रखना चाहिए जिनका प्रभाव आनेवाले युगों पर निरन्तर पड़ता आया है।

अरस्तू और उसकी शिक्षा

अरस्तू का परिचय—यूनान का तीसरा शिक्षा-शास्त्री अरस्तू था। यह प्लैटो का शिष्य था। अरस्तू का जन्म एथेन्स से लगभग २०० मील उत्तर की ओर स्टेगरा नामक स्थान में ईसा से तीन सौ चौरासी वर्ष पूर्व हुआ था। अरस्तू का पिता सिकन्दर के पितामह का मित्र और चिकित्सक था। अरस्तू को भी चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन करना पड़ा। उसे आरम्भ ही से वैज्ञानिक अध्ययन के अवसर मिलते रहे। अरस्तू के पूर्व किसी दूसरे विद्वान ने वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया। इसीलिए अरस्तू को विज्ञान का जन्मदाता भी कहते हैं।

अरस्तू के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। उसके सम्बन्ध में एक कथा यह है कि उसने युवा-काल में अपनी पैतृक सम्पत्ति लुटाकर भूखों न मरने के लिए सेना में नौकरी कर ली। उसके बाद वह अपने जन्मस्थान स्टैगरा में लौट आया और चिकित्सा का कार्य करने लगा। तत्पश्चात् तीस वर्ष की आयु में प्लैटो के पास दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए गया। दूसरी कथा यह है कि अरस्तू अट्ठारह वर्ष की अवस्था में प्लैटो के पास अध्ययन के लिए गया था। इस प्रकार इन दोनों कथाओं से ज्ञात होता है कि अरस्तू ने अपना प्रारम्भिक जीवन अव्यवस्थित रूप से व्यतीत किया और बाद में प्लैटो के पास जाकर दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया।

प्लैटो से सम्पर्क—अरस्तू अत्यन्त प्रतिभाशाली युवक था और प्लैटो जैसा दार्शनिक शिक्षक जब उसे मिला तब उसकी

प्रतिभा और भी प्रस्फुटित हुई। प्लैटो ने अपने शिष्य अरस्तू को बड़े परिश्रम से शिक्षा दी और अरस्तू ने भी शिक्षा ग्रहण करने में कोई त्रुटि नहीं रखी। इसका फल यह हुआ कि शिष्य गुरु से भी अधिक उन्नति कर सका। अरस्तू के विद्वत्ता के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उसने एक पुस्तकालय अपना धन व्यय करके बनाया था। यह स्मरण रखना चाहिए कि उस समय पुस्तकें छपती नहीं थीं वरन् लिखित होती थीं। अतः पुस्तकों का मूल्य अधिक होता था।

सिकन्दर का शिक्षक—अरस्तू अपने युग का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् और दार्शनिक था। उस समय उसके और भी प्रतियोगी थे, जिनमें आइसोक्रेटीज़ का नाम उल्लेखनीय है। अरस्तू ने अपने प्रतियोगी आइसोक्रेटीज़ को नीचा दिखाने के लिए भाषण-कला का एक विद्यालय खोला। इस विद्यालय में धनी वर्ग के युवक भाषण-कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे क्योंकि अरस्तू अत्यन्त योग्य शिक्षक था। इसी कारण सिकन्दर के पिता ने अरस्तू को सिकन्दर का शिक्षक नियुक्त किया। अरस्तू जब सिकन्दर का शिक्षक नियुक्त हुआ तब सारे यूनान में उसकी विद्वत्ता की धाक जम गई। सिकन्दर आरम्भ में बहुत ही उच्छृंखल युवक था। शिक्षा में उसका मन न लगता था लेकिन जब वह अरस्तू के सम्पर्क में आया तो उसमें संयम का विकास हुआ। वह अरस्तू का बहुत आदर करता था और उसे अपने पिता के समान मानता था।

सिकन्दर को शिक्षा देने के पश्चात् अरस्तू यात्रा करने के लिए निकल पड़ा और बहुत दिनों तक भ्रमण करने के बाद एथेन्स में लौट आया। इस समय अरस्तू की अवस्था ५२ वर्ष की

हो चुकी थी और एथेन्स पर सिकन्दर का अधिकार था। अरस्तू ने एथेन्स में आकर सिकन्दर के शासन-कार्य में सहायता पहुँचाई। राज्य के लिए योग्य व्यक्तियों की शिक्षा के लिए अरस्तू ने एक विद्यालय खोला। इस विद्यालय की रूप-रेखा को निश्चित करते समय अरस्तू ने अनुशासन का बड़ा ध्यान रखा; क्योंकि उस समय एथेन्स के वातावरण में सिकन्दर के विरुद्ध बातें हो रही थीं और किसी भी दिन विद्रोह हो सकता था। अरस्तू ने अपने जीवन के ५३ वें वर्ष में शिक्षा के जिन सिद्धान्तों की स्थापना की उन पर हम प्लैटो का प्रभाव पाते हैं। इतना ही नहीं, कुछ दृष्टियों से अरस्तू प्लैटो से भी बढ़ कर हैं।

अरस्तू के दार्शनिक विचार—अरस्तू ने प्लैटो की भाँति समाज के विकास और उन्नति के लिए यह आवश्यक समझा कि व्यक्ति में राजनीतिक बुद्धि उत्पन्न हो जिससे कि वह समाज का उपयोगी सदस्य और राज्य का कुशल नागरिक बन सके। जब तक अच्छे नागरिक न होंगे तब तक राज्य के सुंदर शासन में बाधाएँ उपस्थित होती रहेंगी। इसीलिए अरस्तू ने शिक्षा के द्वारा कुशल नागरिक बनाने की व्यवस्था की। प्लैटो की भाँति अरस्तू भी यह मानता था कि राज्य की सेवा करना ही जीवन की सफलता है। अतः उसने शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को जीवन पर्यन्त राज्य की सेवा में लगाए रखने की व्यवस्था की।

अरस्तू और प्लैटो की तुलना—अरस्तू की शिक्षा का उद्देश्य इस तथ्य में निहित था कि व्यक्ति और समाज में किसी प्रकार का विरोध न हो और दोनों मिल कर राज्य की सेवा करें। साथ ही जहाँ प्लैटो ने विचार (Idea) को प्रधानता दी, वहाँ अरस्तू ने आनन्द (Happiness) को मुख्य वस्तु माना। अरस्तू के अनुसार विचार

तो वस्तु को केवल रूप (Form) प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई उपयोग नहीं। इसके विपरीत प्लैटो यह मानता था कि विचार ही के द्वारा मनुष्य गुणी बनता है और गुण ही के सहारे उसमें नैतिकता का विकास होता है। इस प्रकार प्लैटो व्यक्ति में 'विचार' उत्पन्न कर नैतिकता का विकास करना चाहता था। लेकिन अरस्तू इसे न मान कर यह चाहता था कि प्रत्येक व्यक्ति राज्य के हित को अपने जीवन का उद्देश्य माने और व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध का आधार 'आनन्द' हो। यह आनन्द क्या है ? जब तक हम इस तथ्य को नहीं समझते, तब तक अरस्तू को समझना कठिन है।

अरस्तू और आनन्द—अरस्तू के अनुसार जीवन का उद्देश्य अच्छाई (Goodness) नहीं, वरन् आनन्द है। आनन्द जीवन का साध्य है न कि साधन। इसके विपरीत जब हम अच्छे बनने की कोशिश करते हैं, तब इससे यह स्पष्ट होता है कि अच्छे बन कर हम वह वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं जिससे खुशी होती है। दूसरे शब्दों में हम अच्छाई के द्वारा आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन आनन्द का यहीं अन्त नहीं होता। वास्तविक आनन्द इससे बढ़कर है और वह तब मिलता है जब कि मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति के द्वारा इसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। मनुष्य की सम्पूर्ण शक्ति उसकी विचारशक्ति पर निर्भर है। इसी शक्ति के कारण मनुष्य मनुष्य में अन्तर पाया जाता है और इसी के आधार पर वह उन्नति और शासन करता है। मनुष्य की विचारशक्ति (Power of thought) का ज्यों ज्यों विकास होता है त्यों त्यों वह आनन्द की ओर अग्रसर होता है और जब उसका पूर्ण विकास हो जाता है, तभी उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार आनन्द की प्राप्ति के लिए सबसे बड़ी

आवश्यकता विचारशक्ति है। विचारशक्ति ही पर मनुष्य के सभी गुण निर्भर करते हैं। विचार और तर्क करके ही मनुष्य यह निश्चय करता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। दूसरे शब्दों में विचार ही मनुष्य के संयम, निर्णय, आदि का आधार है और इसी के द्वारा वह किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए साधन ढूँढ़ता है। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी अच्छी वस्तु हम अच्छे ही साधन से प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में अच्छे साध्य के लिए अच्छा साधन आवश्यक है। इस प्रकार अरस्तू ने साध्य और साधन को समान महत्त्व प्रदान किया। इसका परिणाम यह हुआ कि साधन की अच्छाई (Excellence) पर बल दिया जाने लगा। इस अच्छाई को प्राप्त करने के लिए अरस्तू ने मध्यमा प्रतिपदा अथवा मध्यम मार्ग का (Golden Mean) का अनुसरण करने के लए कहा।

मध्यम मार्ग—अरस्तू के अनुसार किसी भी गुण की विशेषता तीन रूपों में (Triaeds) पाई जाती है। एक तो किसी गुण की अधिकता है, दूसरी न्यूनता और तीसरी माध्यमिकता। अरस्तू के अनुसार किसी भी गुण की अधिकता और न्यूनता दोनों ठीक नहीं है। इसलिए मनुष्य को मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उदाहरण के लिए साहस का गुण है। साहस को अधिकता उतावलापन (Rashness) है और उसकी न्यूनता कायरता। इसी प्रकार मित्रता चाटुकारिता और कलह का मध्यमा प्रतिपदा (Golden mean) है। इसी तथ्य को हम महात्मा बुद्ध के उपदेश में भो पाते हैं। महात्मा बुद्ध ने सर्वप्रथम उपदेश दिया—

"भिक्षुओ ! संन्यासी को चाहिए कि वह इन दो अन्तों का

सेवन न करे। कौन से दो अन्त ? एक तो यह जो काम और विषय-वासनाओं का जीवन है, जो अत्यन्त हीन, ग्राम्य, अनार्य और अनर्थकर है; और दूसरा यह जो शरीर को व्यर्थ ही पीड़ा पहुँचाना; (क्योंकि) यह भी अत्यन्त हीन, ग्राम्य, अनार्य, अनर्थकर है। इन दोनों अन्तों को त्याग कर तथागत ने मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) का उपदेश दिया है। ......कौन सी है यह मध्यमा प्रतिपदा ? यही जो (१) ठीक (सम्यक् विचार), (२) ठीक संकल्प, (३) ठीक वाणी, (४) ठीक कर्म, (५) ठीक आजीविका, (६) ठीक व्यायाम, (७) ठीक स्मृति (चित्त-वृत्ति) और ठीक समाधि।"[1]

तथागत के इस उपदेश का प्रकाश अरस्तू के मध्यम मार्ग पर पर्याप्त रूप से पड़ता है और हमें समझने में भी सरलता होती है। इसीलिए इसका उल्लेख यहाँ अपेक्षित है। महात्मा बुद्ध ने जिन आठ बातों का उल्लेख किया है, वे मनोवैज्ञानिक भी हैं। इसका विश्लेषण हमें बौद्ध-शिक्षा के इतिहास में मिलेगा।

सम्यक् कार्य का महत्त्व—अरस्तू ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'एथिक्स' में लिखा है कि जब कोई व्यक्ति ठीक (सम्यक्) कार्य करता है तभी वह अच्छा और गुणी माना जाता है। इसलिए अरस्तू का विचार था कि व्यक्ति कोई काम ठीक से इसलिए नहीं करता कि उसमें अच्छाई (Excellence) है, वरन् उसमें अच्छाई इसलिए है कि वह ठीक से कार्य करता है।[2] इस प्रकार

---

१. धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र बुद्धचर्या।

2 ....We do not act rightly because we have virtue or excellence, but we rather have these because we have acted rightly......" The story of Philosophy.

हम देखते हैं कि अरस्तू भी 'ठीक से काम' को अधिक महत्त्व प्रदान करता था। उसके अनुसार ठीक से कार्य करने की आदत मनुष्य को डालनी चाहिए। तभी उसमें गुण और अच्छाई (Virtue and excellence) उत्पन्न होती है।

सम्यक् कार्य और मध्यम मार्ग के पक्ष में अधिकतर दार्शनिकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। अरस्तू के गुरु प्लैटो ने भी गुण उसी कार्य को माना जिसमें किसी प्रकार का विरोध न हो (Virtue in harmonious action)। इसी प्रकार सुकरात जब ज्ञान और गुण में समन्वय स्थापित करता है, तब उसका तात्पर्य सम्यक् कार्य से होता है। अरस्तू ने इस सत्य को अधिक स्पष्ट किया, इसमें कोई संदेह नहीं।

अरस्तू का आदर्श व्यक्ति—अरस्तू ने अपने दार्शनिक विचारों और सिद्धान्तों द्वारा जीवन में आनन्द की प्राप्ति पर जोर दिया। आनंद की प्राप्ति के लिए व्यक्ति में अच्छाई और गुण होना चाहिए जो कि सम्यक् कार्य पर निर्भर है। जब व्यक्ति यह सब कर ले तभी वह आदर्श व्यक्ति बन सकता है। अपनी पुस्तक 'एथिक्स' में अरस्तू ने आदर्श व्यक्ति का वर्णन किया है जो इस प्रकार है:—

वह बिना प्रयोजन अपने को संकट में नहीं डालता क्योंकि ऐसी वस्तुएँ बहुत कम हैं जिनके लिए उसे चिन्ता करनी पड़ती है; लेकिन वह अवसर आने पर अपनी जान भी देने के लिए तैयार रहता है क्योंकि वह जानता है कि किन्हीं परिस्थितियों में मृत्यु जीवन से भी श्रेयस्कर है। वह दूसरों की सेवा के लिए सदा तत्पर रहता है और दूसरों से अपनी सेवा कराने में लज्जित होता है। किसी पर दया करना श्रेष्ठता है और

किसी की दया का पात्र बनना लघुता। ... वह क्या पसन्द करता है और क्या चाहता है, यह स्पष्ट होता है। वह बिना हिचक के साफ साफ बातें कहता और कार्य करता है। वह प्रशंसा से कभी फूलता नहीं क्योंकि उसकी दृष्टि में कोई वस्तु बड़ी नहीं है। वह सबसे मित्रता का व्यवहार रखता है और किसी का दास बनना नहीं चाहता। वह अपने मन में नीच विचारों को नहीं रखता और वह दूसरों द्वारा की गई हानियों को भूल जाता है। उसे बातचीत करने का शौक नहीं है। वह यह नहीं चाहता कि उसकी प्रशंसा हो और दूसरों की निंदा। वह दूसरों की, यहाँ तक कि अपने शत्रुओं की भी निंदा और बुराई नहीं करता। उसकी वाणी में गंभीरता होती है और वह नपे-तुले शब्दों का प्रयोग करता है। वह कभी जल्दी नहीं करता क्योंकि वह किसी वस्तु के सम्बन्ध में चिंतित नहीं रहता। वह किसी बात को बहुत ज़ोर देकर भी नहीं कहता क्योंकि वह किसी भी बात को बहुत महत्त्व नहीं देता। वह जीवन के संघर्षों का सामना गौरव और गरिमा से करता है और परिस्थितियों से यथासंभव लाभ उठाकर अपनी शक्ति का उसी प्रकार प्रयोग करता है जैसे युद्ध में एक सेनानायक। वह अपना सबसे बड़ा मित्र होता है और एकान्त में बड़े आनन्द के साथ रहता है, इसके विपरीत जो व्यक्ति गुणहीन और अयोग्य है, वह स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु है और वह एकान्त से घबराता है।"[1]

अरस्तू के आदर्श व्यक्ति का जो वर्णन ऊपर दिया गया है उससे हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि वह किस प्रकार के व्यक्ति को चाहता था। इसी व्यक्ति की तैयारी में अरस्तू की शिक्षा की रूपरेखा निश्चित हुई है।

* (1) Ethics, X 7.;

अरस्तू की शिक्षा का उद्देश्य—अरस्तू के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आनन्द (Happiness) की प्राप्ति है। यह आनन्द मनुष्य को उस समय प्राप्त होता है जब कि सम्यक (ठीक) कार्य करता है। ठीक से कार्य करने की आदत डालना शिक्षा का अनुषांगिक उद्देश्य है। ठीक से कार्य करने की शिक्षा में व्यक्ति का विकास भी निहित है। इस प्रकार अरस्तू की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का विकास इस दृष्टि से करना है कि वह विचारशक्ति के द्वारा सम्यक् कार्य करे और मध्यम मार्ग का अनुसरण कर आनन्द की प्राप्ति करे।

अरस्तू ने शिक्षा का उद्देश्य निश्चित करते समय बालक के स्वभाव और मनोविज्ञान को भी ध्यान में रखा। प्लैटो ने व्यक्ति के मनोविज्ञान का जो अध्ययन आरम्भ किया था, उसे अरस्तू ने वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा पूर्ण किया। उस अध्ययन के आधार पर अरस्तू का मत था कि "बालक असभ्य व्यक्ति की भाँति सुख के पीछे पड़ा रहता है।"[1] आरम्भ में बालकों में इंद्रियजन्य संवेदन और भावनाओं की प्रधानता होती है। उनमें अनुकरण, उत्सुकता, स्पर्धा आदि की प्रवृत्तियाँ होती हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य इन प्रवृत्तियों का विकास इस प्रकार करना है कि बालकों में अच्छी आदतें पड़ें और वे ठीक से कार्य कर सकें।

शिक्षा का संगठन—अरस्तू ने बालक में अच्छी आदतें डालने और उसके चरित्र का विकास करने के लिए शिक्षा के विषय और संगठन को निश्चित किया। इस सम्बन्ध में हमें अरस्तू के शिक्षा सम्बन्धी उन प्रमुख विचारों से परिचित हो जाना चाहिए जो उसने अपनी पुस्तक 'पालीटिक्स' में व्यक्त

---

(1) Politics, VII, II.

किये हैं। अरस्तू का मत था कि शिक्षा पर राज्य (State) का नियंत्रण होना चाहिए। जिन वस्तुओं के द्वारा शासन के विधान को शक्ति मिले, उन्हें शिक्षा में स्थान देना चाहिए। नागरिक की शिक्षा भी शासन के अनुरूप होनी चाहिए। जब विद्यालयों पर राज्य (State) का नियंत्रण होगा, उस समय यह संभव होगा कि आवश्यकतानुसार लोगों को वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धंधों से हटाकर कृषि-कार्य में लगा दिया जाय। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को यह भी सिखाया जाय कि वह, अपनी सम्पत्ति का पूर्णाधिकारी होते हुए भी, दूसरों के साथ मिलकर उसका उपभोग कर सके। दूसरे शब्दों में अरस्तू इस पक्ष में था कि आवश्यकतानुसार व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को समाज के सुख के लिए व्यय करे। लेकिन इन सबसे अधिक अरस्तू भावी नागरिक के लिए अनुशासन की शिक्षा आवश्यक मानता था। शिक्षा के विषय और संगठन ऐसे हों जो अनुशासन और नियम-पालन की भावना का विकास करें। अरस्तू का विश्वास था कि योग्य अधिकारी वही व्यक्ति बन सकता है जिसमें अनुशासन और नियम-पालन की भावना हो। इसलिए बालक की शिक्षा में अनुशासन और नियम-पालन का पूरा ध्यान रखा जाय। जब बालक में अनुशासन की प्रवृत्ति होगी तभी वह योग्य नागरिक बन सकता है। इस प्रकार के योग्य नागरिक बनाना तभी संभव होगा जब कि शिक्षालयों पर राज्य का नियंत्रण हो। राज्य शिक्षा की योजना बनाकर शिक्षा का प्रबन्ध करे तभी शासन-कार्य सफलतापूर्वक हो सकता है। इसलिए शिक्षा द्वारा युवक को यह भली भाँति अनुभव करा देना चाहिए कि राज्य से ही उसे सुख प्राप्त होते हैं। यदि राज्य न हो तो उसे सुख नहीं मिल सकता क्योंकि राज्य ही समाज का संगठन करके उसकी रक्षा करता है

और नियम-पालन करा कर स्वतंत्रता प्रदान करता है। यदि लोग नियम-पालन न करें तो सबकी जान हर समय ख़तरे में रहे और किसी को किसी भी तरह की स्वतंत्रता न मिले। इस प्रकार अरस्तू शिक्षा द्वारा व्यक्ति को राज्य की सेवा और रक्षा के लिए तैयार करना चाहता था। इसीलिए शिक्षा के संगठन पर राज्य का नियंत्रण भी अरस्तू चाहता था।

शिक्षा के विषय—अरस्तू ने शिक्षा के लिए तीन अवस्थायें निश्चित कीं। प्रथम अवस्था जन्म से सात वर्ष की थी। इस अवस्था में बालक की प्रारम्भिक शिक्षा होती थी। प्रारम्भिक शिक्षा के विषयों में खेल-कूद को प्रधान स्थान दिया। अरस्तू शारीरिक विकास को आवश्यक मानता था। उसका विचार था कि स्वस्थ शरीर ही में स्वस्थ मस्तिष्क हो सकता है। लेकिन वह स्पार्टी शिक्षा की भाँति व्यायाम की अति नहीं चाहता था। वह शारीरिक विकास के लिए अधिक शारीरिक परिश्रम के पक्ष में नहीं था क्योंकि उसका विश्वास था कि "अधिक शारीरिक परिश्रम से मस्तिष्क थक जाता है और बौद्धिक परिश्रम से शरीर।" सात वर्ष के बाद चौदह वर्ष की अवस्था तक लिखना-पढ़ना, संगीत और साधारण ज्ञान शिक्षा के प्रधान विषय थे और साथ ही व्यायाम तथा खेल-कूद की भी व्यवस्था थी। चौदह वर्ष के बाद इक्कीस वर्ष तक में गणित, ज्यामिति और खगोल की शिक्षा होनी चाहिए। इक्कीस वर्ष के बाद अरस्तू युवकों के लिए नीति-शास्त्र, मनोविज्ञान और राजनीति का अध्ययन आवश्यक मानता था क्योंकि राज्य-कार्य में भाग लेने के लिए इन विषयों का ज्ञान अपेक्षित है।

शिक्षा की पद्धति—अरस्तू की शिक्षा-पद्धति का प्रधान

आधार 'अनुभव' था। उसका विचार था कि बालक की शिक्षा की पद्धति उसके अनुभव पर निर्भर होनी चाहिए। अरस्तू की शिक्षा-पद्धति में दूसरा सिद्धान्त 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' था। जब विद्यार्थी को किसी विषय की शिक्षा देनी हो तो उसके लिए ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाने की पद्धति प्रयोग में लानी चाहिए। अरस्तू ने शिक्षा की जो पद्धतियाँ निश्चित कीं उन्हें हम आजकल प्रयोग में लाते हैं। यह सत्य है कि इन पद्धतियों में वह निखार और स्पष्टता न थी जो आजकल है।

यह तो हम जानते हैं कि अरस्तू को वैज्ञानिक पद्धति बहुत पसन्द थी। इसलिए शिक्षा में अरस्तू यह चाहता था कि किसी विषय के सम्बन्ध में सभी बातों का ज्ञान करा कर बालक द्वारा निष्कर्ष निकलवाना चाहिए। इस पद्धति को आजकल 'आगमन पद्धति' (Inductive Method) कहते हैं। दूसरे शब्दों में अरस्तू की शिक्षा-पद्धति वैज्ञानिक थी और वह अनुभव, तर्क और विचार पर आधारित थी।

समाज पर प्रभाव—अरस्तू की शिक्षा का तत्कालीन समाज पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना कि आनेवाले युग पर। अरस्तू की रचनायें मिश्र और अरब देशों में गईं और वहाँ उनका अनुवाद हुआ। इन अनुवादों का प्रभाव उन देशों की संस्कृति पर पड़ा। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म पर भी अरस्तू का प्रभाव पड़ा। तात्पर्य यह है कि अरस्तू के बाद का काल और आजकल भी अरस्तू के विचारों से प्रभावित है।

अरस्तू अपने तत्कालीन एथेन्स को प्रभावित नहीं कर सका। इसका कारण उसका सिकन्दर के शासन का पक्षपात था। एथेन्स पर मेसीडोनियन लोगों का अधिकार था और

अरस्तू इनकी सहायता करता था। इसलिए एथेन्स के लोग अरस्तू को नहीं चाहते थे। अरस्तू भी अपने विचारों को राजनीति की भूमिका में निश्चित करता था क्योंकि उसके लिए राजनीति सबसे बढ़कर थी। इसलिए वह राजनीति की दृष्टि से ही सभी वस्तुओं को देखता और समझता था। साथ ही वैज्ञानिक होने के कारण वह आगमन पद्धति का अनुसरण करता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अरस्तू का तत्कालीन समाज पर प्रभाव न पड़कर, आगामी युगों पर पड़ा और उसकी वैज्ञानिक विचारधारा से विश्व में विज्ञान का विकास हुआ।

अरस्तू के बाद यूनानी शिक्षा

अरस्तू का अंत—अरस्तू के जीवन के अंतिम काल में एथेन्स की दशा बिगड़ चली थी। इसके कई कारण थे। यह तो हमें ज्ञात ही है कि एथेन्सवासी सिकन्दर का विरोध आरम्भ से ही कर रहे थे क्योंकि सिकन्दर एथेन्स का निवासी नहीं था। अरस्तू भी एथेन्स का रहनेवाला नहीं था। इसलिए एथेन्स के लोग दोनों का विरोध करते थे। इसी समय अरस्तू के भतीजे कैलिस्थनीज़ को सिकन्दर ने फाँसी की सजा दी, क्योंकि उसने सिकन्दर को देवता की भाँति नहीं माना। अरस्तू ने सिकन्दर की आज्ञा का विरोध किया और कहा कि फाँसी नहीं होनी चाहिए। सिकन्दर कब इसे सुनने लगा और उसने कहा कि मैं अरस्तू को भी फाँसी दे सकता हूँ। मगर फिर भी, अरस्तू सिकन्दर की सहायता करता ही गया।

इसी बीच ईसा से ३२३ व० पू० में सिकन्दर की मृत्यु हुई। मृत्यु का समाचार सुनते ही एथेन्स के लोग खुशी से पागल हो गये क्योंकि उन्हें अब आज़ादी मिलनेवाली थी। सिकन्दर की मैसीडोनिया की पार्टी निकाल बाहर की गई और उसीके साथ अरस्तू का भी आदर, सम्मान और अधिकार जाता रहा। जब एथेन्स के लोगों का शासन हुआ तो यूरीमेडान (Eurymedon) नामक पुरोहित ने अरस्तू पर यह दोष लगाया कि वह धर्म के विरुद्ध प्रचार करता है, इसलिए उस पर मुकदमा चलाना चाहिए। अरस्तू ने चालाकी की और एथेन्स छोड़ कर चला गया

क्योंकि वह नहीं चाहता था कि उसकी भी मौत सुकरात की भाँति हो। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अरस्तू का एथेन्स छोड़कर जाना कोई कायरता न थी क्योंकि एथेन्स में यह नियम था कि यदि अपराधी चाहे तो एथेन्स छोड़कर जा सकता था। वास्तव में एथेन्स से निकल जाना स्वयं एक बड़ी सजा थी।

एथेन्स छोड़कर अरस्तू चालसिस (Chalcis) नामक स्थान में आया। यहाँ आकर वह बीमार पड़ा। इस समय अरस्तू बड़ा निराश हो चुका था क्योंकि उसने जीवन भर जिस राज्य के लिए कार्य किया वह समाप्त हो चुका था। इसलिए उसकी बीमारी उसके मौत का कारण हुई। अरस्तू ने विष पान कर अपने प्राण ३२२ ई० पू० में दिये। इस प्रकार अरस्तू का अंत हुआ।

सार्वलौकिक युग—इसके बाद एथेन्स और यूनान में एक ऐसा युग आता है, जिसे हम सार्वलौकिक युग कह सकते हैं। इस युग में सुकरात, प्लैटो और अरस्तू जैसे दार्शनिक न थे, मगर फिर भी इनकी शिक्षाओं का प्रभाव था। फलतः यूनानी समाज में सार्वजनीन शिक्षा का प्रसार था। लेकिन इस सार्वजनीन (Universal) शिक्षा का प्रभाव यह पड़ा कि जहाँ लोगों में एक ओर उदारता आई वहीं दूसरी ओर उनमें व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का विकास हुआ। इसका कारण यह था कि उस समय यूनानी सभ्यता और संस्कृति का आस-पास के देशों में प्रसार हो चुका था और यूनानियों में पहले की सी तीव्र राष्ट्रीयता न रह गई। फलतः उनकी उदारता से जहाँ लोक-भावना का पोषण हुआ, वहीं उनमें समाज के प्रति उत्तरदायित्व की कमी आ गई और वे व्यक्तिवादी बनने लगे। साथ ही यूनान की परम्परा यह भी

रही है कि समय-समय पर सुकरात, प्लैटो और अरस्तू जैसे दार्शनिक पथ-प्रदर्शन का कार्य करते थे। लेकिन अब ऐसे, दार्शनिकों का अभाव था जो व्यक्ति, समाज और राज्य में एक सुंदर समन्वय स्थापित करते। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों में व्यक्तिवादी भावना का विकास हुआ, समाज और राज्य के प्रति उदासीनता आई। साथ ही नैतिकता का भी ह्रास हुआ क्योंकि नैतिकता का आधार सामाजिक कर्त्तव्य और राज्य के प्रति निष्ठा थी। अब लोगों को केवल अपनी चिंता थी और व्यक्ति सभी सामाजिक बंधनों से अपने को मुक्त समझने लगा। ऐसी दशा में नैतिकता का प्रश्न ही कब उठता है? हाँ, जो कुछ नैतिकता बची वह धार्मिक क्षेत्रों में ही रह सकी, अन्यथा समाज और राज्य से नैतिकता का कोई सम्बन्ध अब न रह सका। लेकिन साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नैतिकता का जब राज्य से सम्बन्ध न रहा, तब वह राजनीतिक प्रभावों से मुक्त होकर सार्वलौकिक हितों में लग गई और यूनानी लोगों में उस भावना और प्रवृत्ति का विकास हुआ जो विश्व की एकता और मानवता की मूल कही जा सकती है। दूसरे शब्दों में यूनानियों में अब ऐसी राष्ट्रीयता नहीं रही जो अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोध करती।

शिक्षा-संस्थाय—इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप यूनानी शिक्षा में ऐसी संस्थाओं का विकास हुआ जो सार्वलौकिक आदर्शों के अनुकूल थीं। इन संस्थाओं के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम प्रमुख शिक्षा-संस्थाओं से परिचित हो लें।

भाषा की शिक्षा और भाषण-कला—यूनानी-शिक्षा में

सोफिस्टों के आने पर तर्क और भाषण-कला का महत्त्व इसलिए अधिक हो गया कि इसके द्वारा व्यक्ति यूनानी समाज में आदर का स्थान पा सकता था। सभाओं में जो व्यक्ति जितनी ही कुशलता से शब्दों का प्रयोग कर सकता, और तर्क उपस्थित कर सकता था, वह उतना ही विद्वान् समझा जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग सारी शक्ति लगा कर यह सीखने लगे कि कोई बात कैसे कही जाय। क्या बात कही जाय इसकी ओर ध्यान कम दिया गया क्योंकि उनकी धारणा यह बन गई कि गलत बात भी यदि अच्छे ढंग से कही जाय तो वह सही मालूम पड़ेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की बनावट पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और जिन बातों को भाषा के माध्यम से कहना है, उनकी अवहेलना होने लगी। इसलिए भाषा की बनावट और भाषण-कला की शिक्षा के लिए शिक्षालय भी खोले गये। लेकिन आरम्भ में सुकरात ने इस बात की कोशिश की कि जो कुछ कहा जाय उसमें तत्त्व भी हो। सुकरात, प्लैटो और अरस्तू ने जो प्रयास किये उसके फलस्वरूप यूनानी दर्शन शास्त्र का विकास हुआ था। पर अरस्तू के प्रतियोगी आइसोक्रेटीज़ ने भाषण-कला का जो शिक्षालय चलाया था, वह भली-भाँति चलता रहा। इतना ही नहीं उसके विद्यालय में विदेशों से भी विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे। मगर सुकरात, प्लैटो और अरस्तू ने जिस दार्शनिक धारा को प्रवाहित किया उसके फलस्वरूप यूनान में दार्शनिक विद्यालयों की नींव पड़ी।

दार्शनिक विद्यालय—यूनान में दार्शनिक विद्यालयों का आरम्भ प्लैटो और अरस्तू के समय से हो गया था। उस समय कुछ विद्यार्थी इन दार्शनिकों से दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए आते थे। कुछ समय के बाद प्लैटो ने एकेडेमी और

अरस्तू ने लीक्यूम (Lyceum) की स्थापना की। इन दार्शनिक विद्यालयों की अपनी कुछ सम्पत्ति भी होती थी। प्लैटो और अरस्तू के बाद यह नियम हो गया कि इन विद्यालयों का कोई प्रधानाध्यापक नियुक्त हो। इन विद्यालयों के विद्यार्थियों को विद्यालय के व्यय के लिए शुल्क भी देना पड़ता था। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यूनानी-शिक्षा में शुल्क देने की परिपाटी सोफिस्टों ने चलाई थी और इस परिपाटी का आरम्भ में विरोध भी हुआ था। लेकिन अब विद्यालयों की स्थापना हो गई थी और उनके व्यय के लिए विद्यार्थियों से शुल्क लेना स्वाभाविक था। इस प्रकार शिक्षालयों की व्यवस्था के लिए शुल्क लेने की परिपाटी चल पड़ी और राज्य भी अपने आर्थिक उत्तरदायित्व से बच गया। इसलिए अब जो चाहे शिक्षालय खोल सकता था। फलतः एकेडेमी और लीक्यूम के अतिरिक्त दो और विद्यालय खोले गये। एक विद्यालय तो जेनो (Zeno) ने एक मंदिर के बरामदे में खोला था। इस विद्यालय के विद्यार्थी 'स्टोइक्स' (Stoics) कहे जाते थे। दूसरा विद्यालय एपीक्यूरस (Epicurus) ने अपने स्थान पर ही खोला। एपीक्यूरस का विद्यालय भी दर्शन-शास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत प्रसिद्ध था और इसी के आधार पर 'एपीक्यूरियन दर्शन' की एक धारा ही निकल पड़ी। एपीक्यूरियन दर्शन की विशेषता यह थी कि इसमें 'खाओ पियो मौज करो' का सिद्धान्त प्रमुख था।

अरस्तू का विद्यालय—यह तो हम जानते ही हैं कि अरस्तू ने जो दार्शनिक विद्यालय खोला था, उसका नाम लीक्यूम था। अरस्तू के इस विद्यालय में अनुशासन की कठोरता और अन्य कठिनाइयाँ भी थीं। फलतः यह विद्यालय अधिक विकसित न हो सका। मगर फिर भी अरस्तू के बाद के प्रधानाचार्य थियोफ्रेस्टस

(Theophrastus) के समय में लीक्यूम में विद्यार्थियों की संख्या लगभग दो हजार थी। एक विद्यालय में दो हजार की संख्या कम नहीं हो सकती। लेकिन अरस्तू इससे भी अधिक उन्नति चाहता था।

प्रधानाचार्य थियोफ्रेस्टस के बाद प्रधानाचार्य के पद के चुनाव की व्यवस्था चल पड़ी। विद्यालय के अन्य अध्यापक मिल कर अपने प्रधान का चुनाव करते थे। आजकल के विश्वविद्यालयों में वाइस चांसलर के चुनाव की प्रथा संभवत: लीक्यूम की प्रथा से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त कुछ समय के बाद प्रधानाचार्य को वेतन भी मिलने लगा और अब वेतनभोगी स्थान के लिए चुनाव शासन अथवा नृप के द्वारा होने लगा।

विद्यालयों की प्रगति—यूनानी विद्यालयों का विकास इस प्रकार एक निश्चित दिशा में होने लगा। बहुत से लोग विद्यालयों में अध्यापन-कार्य करने लगे और विद्यार्थियों को घर पर पढ़ाने के लिए जाने लगे। दूसरे शब्दों में शिक्षकों की दशा वर्तमान काल जैसी हो चली। हाँ, उनकी अवहेलना वर्तमान युग के अध्यापकों की भाँति न थी। इसलिए विद्यालयों की प्रगति भली भाँति होने लगी। लेकिन अरस्तू के विद्यालय लीक्यूम की प्रगति न हो सकी। इसका कारण यह था कि अरस्तू के विद्यालय में नये दर्शन का विकास न हो सका और साथ ही अरस्तू के बाद के आचार्यों ने अरस्तू के दर्शन की सुंदर व्याख्या भी नहीं की। फलत: अरस्तू के विद्यालय की प्रगति रुक गई। लेकिन अन्य तीन विद्यालयों की प्रगति संतोषजनक थी। प्लैटो की एकडेमी में 'प्लैटोवाद' (Platonism) जेनो के विद्यालय में स्टोइकवाद (Stocism) और एपीक्यूरस के विद्यालय में एपीक्यूरसवाद (Epicureanism)

जैसे नवीन दर्शनों का विकास हुआ और इनके द्वारा आनेवाले युग को सहायता भी मिली। लेकिन साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि शिक्षा अब व्यावसायिक हो चली थी। इसका कारण यह था कि जो शुल्क दे सकता था, वह विद्यालय में जाता था और जैसी दशा आजकल के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की है, वही दशा उस काल के विद्यार्थियों की हो चली थी। फलतः हम देखते हैं कि शिक्षा अब अनुभव, तर्क और विचार पर आधारित न होकर पुस्तकीय हो चली और योग्यता की माप लिखित विचारों का पुनरावर्त्तन हो चला। वास्तविक शिक्षा की दृष्टि से यह प्रवृत्ति अवनति की ओर ले जानेवाली थी। लेकिन साथ ही इस युग की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का भी प्रसार हुआ क्योंकि समाज और राज्य के सभी उत्तरदायित्व से मुक्त व्यक्ति नवीन दर्शनों में भी अपने लिए ही सुख की खोज करने लगा। फलतः व्यक्ति अपना विकास इसलिए करने लगा कि वह अन्य व्यक्तियों से अपने को श्रेष्ठ समझे। इसका कारण यह था कि अब यूनानी लोगों के सामने कोई ऐसा लक्ष्य समाज के हित, राज्य की रक्षा आदि के रूप में न था जो सब को एक साथ ले चलती।

विश्वविद्यालयों की स्थापना—इस प्रकार के दार्शनिक विद्यालयों के साथ साथ दूसरे छोटे छोटे शिक्षालयों का भी विकास हुआ। लेकिन इन सबसे महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ एथेन्स और सिकन्दरिया के विश्वविद्यालयों की थीं क्योंकि इनमें केवल देश ही के विद्यार्थी शिक्षा नहीं प्राप्त करते थे, वरन् अन्य देशों, विशेषकर रोम और इटली के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करते थे। इन विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को मानसिक कार्य अधिक करना पड़ता था और शारीरिक कार्य केवल प्रमुख अवसरों पर ही क्योंकि अब मस्तिष्क के साथ शरीर के विकास

पर उतना बल नहीं दिया जाता था जितना कि पहले। साथ ही अब अध्ययन काल लगभग सात वर्ष का हो गया था। इस प्रकार इन विश्वविद्यालयों की दशा आधुनिक विश्वविद्यालयों की भाँति हो चली थी। जब हम मध्यकालीन पश्चिमी शिक्षा का अध्ययन करेंगे तो हम विश्वविद्यालयों के एक क्रमिक विकास का पूर्ण ज्ञान हो सकेगा। अत: यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

यूनानी शिक्षा का अंत—यूनानी शिक्षा की विकास और प्रगति से परिचित हो जाने के बाद हम यूनानी शिक्षा के अंत की ओर अग्रसर होते हैं। यह अंत वास्तव में एक प्रकार का रूप परिवर्त्तन है। जब रोम निवासियों का आधिपत्य बढ़ा तो उनकी शिक्षा का प्रभाव भी यूनान पर पड़ा। इस प्रभाव के फलस्वरूप यूनानी शिक्षा का अंत हुआ और एक नई शिक्षा का विकास हुआ। इस नवीन शिक्षा में यूनानी शिक्षा के अंश बहुत मात्रा थे। मगर फिर भी रोमी प्रभाव के कारण इसने एक ऐसा रूप धारण किया जो पुराना होते हुए भी नया था। रोम के शासन का प्रभाव हमें यूनानी शिक्षा के उद्देश्य, संगठन, पद्धति, विषय आदि पर दिखाई देता है। मगर फिर भी यूनानी शिक्षा में जो अच्छाई थी उसका प्रभाव भी रोमी शिक्षा पर पड़ा। इसे हम रोमी शिक्षा के इतिहास में देखेंगे।

रोमी शिक्षा : सांस्कृतिक भूमिका

यूनान के बाद पश्चिमी शिक्षा के इतिहास में रोम का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। रोम ने पश्चिमी सभ्यता के विकास और प्रसार में बड़ा काम किया है और यदि रोम न होता तो शायद पश्चिमी सभ्यता की वर्तमान उन्नति न हो पाती। अतः रोम का पश्चिमी संस्कृति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसे हम रोमी-शिक्षा का अध्ययन करते समय देखेंगे। लेकिन इसके पूर्व यह आवश्यक है कि हम रोम की ऐतिहासिक भूमिका से भी परिचित हो लें। इस परिचय के फलस्वरूप रोम की कहानी अधिक स्पष्ट और रोचक होगी।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—रोमी इतिहास के आरम्भ में इटली के प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग तथा सिसिली द्वीप में यूनानी लोग रहते थे। उन दिनों बड़ी-बड़ी नावें बन चुकी थीं, इसलिए यूनानियों ने उन प्रदेशों में भी बसना शुरू किया जो उनके देश के निकट थे। अतः इस प्रकार जाकर बसे यूनानी लोग इटली प्रायद्वीप के मूल-निवासियों की तुलना में अधिक सभ्य थे। इटली में उस समय कई जातियाँ बसती थीं और उनका सम्बन्ध बाहरी जगत् से न हो सका था। जो जातियाँ उस समय इटली में थीं, उनमें से एक लैटिन जाति थी। लैटिन जाति के लोग इटली प्राय-द्वीप के मध्यभाग में रहते थे। प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में एट्रस्कन (Etruscan) जाति के लोग रहते थे। लेकिन इन लोगों को आल्प पर्वत के दूसरी ओर रहनेवाली गाल (Gaul)

जाति के लोगों ने आकर दक्षिणी भाग की ओर भगा दिया और इनके स्थान पर रहने लगे।

एट्रस्कन लोग—इटली के उत्तरी भाग में रहनेवाले एट्रस्कन लोग, जिन्हें गाल जाति के लोगों ने दक्षिण की ओर भगा दिया था, सभ्यता के पथ पर अग्रसर हो रहे थे। इन लोगों ने बर्बर जातियों से रक्षा के लिए अपनी बस्तियों के चारों ओर ऊँची दीवारें बना दी थीं। इस प्रकार एट्रस्कन के नगर किलों में बसे थे। आने-जाने के लिए इन नगरों में अच्छी सड़कें बनी हुई थीं। एट्रस्कन लोग वाणिज्य-व्यवसाय और कृषि-कार्य भी करते थे। इतना ही नहीं, वे लिखना-पढ़ना भी जानते थे। इस प्रकार रोमी इतिहास के आरम्भ में एट्रस्कन लोग सभ्यता की ओर बढ़ रहे थे।

लैटिन लोग—इटली में दूसरी जाति लैटिन लोगों की थी। ये लोग टाइबर नदी के बायें किनारे पर रहते थे। यह स्मरणीय है कि वर्तमान रोम नगर टाइबर नदी के किनारे सात पहाड़ियों पर बसा हुआ है। टाइबर नदी इटली के पश्चिमी किनारे की ओर बहकर समुद्र में गिरती है। अतः इटली का दक्षिणी भाग टाइबर नदी के बाँयें किनारे पर पड़ता है और उत्तरी भाग दाहिने किनारे पर। टाइबर के दाहिने किनारे पर एट्रस्कन लोग रहते थे।

लैटिन लोगों का प्रधान कार्य भेड़ें चराना और खेती करना था। ये लोग पहाड़ों में झोपड़ियाँ बना कर रहते थे और झोपड़ियों की रक्षार्थ चारों ओर दीवार बना देते थे। इस प्रकार इनके छोटे-छोटे नगरों का विकास हुआ और कुछ समय के बाद इन लोगों ने यह अनुभव किया कि यदि कई नगरों के लोग मिलकर

रक्षा की योजना बनावें तो बड़ा अच्छा हो। फलतः कई नगरों के लोगों ने मिलकर रक्षार्थ और समय-समय पर नये स्थानों को जीतने के लिए भी, संगठन बनाया। संगठन ही शक्ति है। इसलिए लैटिन लोगों ने इस संगठन के द्वारा केवल अपनी रक्षा ही नहीं की, वरन् इन्होंने अपना विस्तार भी आरम्भ किया। कुछ दिनों में (५१० ई० पू०) इन लोगों ने टाइबर नदी के दोनों किनारों पर अधिकार कर लिया। टाइबर नदी के मुहाने से लेकर उद्गम स्थान की ओर का एक बड़ा भू-भाग लैटिन लोगों के अधिकार में आ गया। इस प्रकार इनकी शक्ति बढ़ती गई और २५० ई० पू० में लैटिन लोगों ने सम्पूर्ण इटली पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इटली के दक्षिणी भाग में जो यूनानी नगर थे उन्हें भी इन लोगों ने जीत लिया और फिर पचास वर्षों के बाद सिसिली, सार्डीनिया और स्पेन पर भी इनका अधिकार हो गया।

रोमी साम्राज्य का विस्तार—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनकी शक्ति संगठन में थी। लेकिन इनकी आंतरिक-शक्ति का एक दूसरा भी कारण था। यह कारण इनकी धार्मिक भावना में दिखाई पड़ता है। ये लोग एक धर्म के माननेवाले थे। इस प्रकार इनमें धार्मिक संगठन भी था। संगठन की इस शक्ति के बल से इन लैटिन लोगों को विजय पर विजय प्राप्त होती गई और उस समय भूमध्यसागर के चारों ओर जितने भी देश थे, उनपर इनका अधिकार होता गया। कारथेज, मिश्र, मेसोपोटामिया, फिलस्तीन, सीरिया, यहाँ तक कि एथेन्स और यूनानी राज्य सभी इनके अधिकार में आ गये। इस बड़े साम्राज्य की राजधानी टाइबर नदी के किनारे स्थित रोम नगर बना और फिर इसीके आधार पर यहाँ के लोग रोमी अथवा 'रोमन'

कहलाये। रोम को राजधानी क्यों बनाया गया? इसके भी वही कारण थे जो कि किसी भी देश की राजधानी की स्थिति के लिए हो सकते थे। रोम का एक केन्द्रीय स्थान था और यह एक नदी के किनारे बसा था। नदी के द्वारा समुद्र में जाने की सुविधा थी साथ ही यहाँ से रक्षा-कार्य भी भली भाँति हो सकता था। इन्हीं सब कारणों से रोम इस नये साम्राज्य का केन्द्र बना।

सामाजिक जीवन—रोमी साम्राज्य के विस्तार की कहानी बड़ी रोचक है और इसे इतिहास में पढ़ना चाहिए। अब हम रोमी साम्राज्य के सामाजिक जीवन से परिचित होंगे क्योंकि बिना समाज के परिचय से शिक्षा के स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता।

रोमी साम्राज्य के समाज में लोगों का जीवन सुविधाजनक हो चला था। उस समय वाणिज्य और व्यवसाय का इतना विकास हो गया था कि क्रय-विक्रय में सिक्कों का व्यवहार सरलता-पूर्वक होता था। रोमी समाज के विकास में धर्म और नियम पालन का बड़ा महत्त्व था। रोमी देवताओं की पूजा करना सभी का कर्त्तव्य था। रोमी लोगों के जीवन में सादगी प्रधान थी। वर्षों के युद्ध के बाद रोमी समाज को उन्नति करने का जब अवसर मिला तब पुरानी सादगी जाती रही और नये लोगों में नये प्रकार की रीतियाँ फैलीं। धनी लोगों को शासन करने का अवसर मिला और उन्होंने यह तय किया कि रोमी साम्राज्य का शासन धनी लोगों के लिए और धनी लोगों के द्वारा होगा। इस प्रकार रोम में आर्थिक शोषण का चक्र चला और अमीर लोग गरीबों का हर प्रकार से शोषण करने लगे। उस समय जब रोम के धनी लोग किसी देश पर विजय प्राप्त करते थे तो वहाँ

की सेना के लोगों को कैद कर दास बना लेते थे। यह कहा जाता है कि जब कारथेज पर रोम का अधिकार हुआ तब वहाँ की स्त्रियों और बालकों को पकड़ कर लाया गया और दास के रूप में बेंच दिया गया। इस प्रकार रोम के पूँजीपति अपने धन को भूमि और दास खरीदने में लगाते थे। खरीदे हुए दास बहुत काम करते थे और कभी-कभी काम की अधिकता के कारण कार्यक्षेत्र ही में गिर कर मर जाते थे। ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व तक दासों की बाजार में अधिकता थी और वे बड़े सस्ते मूल्य में खरीदे जा सकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि रोम के समाज में दो वर्ग थे। एक वर्ग तो धनिकों का था और दूसरा वर्ग दासों का।

बेकारी और बीमारी—यह तो हम जानते ही हैं कि लैटिन लोगों का प्रधान काय भेंड़ चराना और खेती करना था। इसलिए जब युद्ध समाप्त हुआ तब सैनिकों ने अपने पुराने पेशे कृषि-कार्य को शुरू किया, लेकिन इस बीच धनी लोगों ने दासों की सहायता से खेती करना आरम्भ कर दिया था। इन धनी लोगों के पास अधिक भूमि थी और काम करने के लिए अनगिनत गुलाम। इसलिए वे लोग बड़े सस्ते में अनाज उत्पन्न करते थे। युद्ध से लौटे हुए सैनिक किसान अपनी मेहनत से उतना सस्ता अन्न नहीं उत्पन्न कर पाते थे जितना कि धनी लोग करते थे। अतः हार कर इन लोगों ने खेती करना छोड़ दिया और नौकरी की तलाश में शहरों में गए। शहरों में इनके लिए काम न था। इसलिए इन्हें भूखा रहना पड़ा। कालान्तर में इस प्रकार के लोगों की संख्या शहरों में बढ़ती ही गई। इन भूखे और गरीब लोगों के लिए रहने के स्थान भी न थे। उन्हें बुरी तरह रहना पड़ता था और धीरे-धीरे उनमें तरह-तरह की

बीमारियाँ भी फैलने लगीं। लेकिन जब आदमी निराश हो जाता है और उसकी मुसीबतों का कोई अन्त नहीं होता तब वह यह तय करता है कि ऐसे जीवन से मृत्यु ही अच्छी है। अतः इन गरीबों ने मिलकर अपना संगठन बनाया और अपनी दशा को सुधारने का प्रयत्न किया।

रोमी समाज के सेवक—लेकिन रोमी समाज में कुछ ऐसे लोग भी थे जो दीन-दुखियों की सहायता करना चाहते थे और यह देखा गया है कि जो लोग समाज की सेवा का व्रत लेते हैं, उन्हें उस सेवा के बदले दुःख, पीड़ा, और मृत्यु तक मिलती है। सुकरात का अंत विष-पान से हुआ, प्लैटो लगभग बारह वर्ष तक मारा-मारा फिरता रहा और अरस्तू के अंतिम काल भी दुःखमय थे। आगे आनेवाले युगों में भी सेवकों की यही दशा हुई है। अतः रोमी समाज के दुःख दूर करने का प्रयास करनेवाले टाइबेरियस (Tiberius) को मार डाला गया। टाइबेरियस जब रोम का 'ट्रिब्यून' चुना गया, तब उसने देखा कि इटली की सारी भूमि दो हज़ार परिवारों के हाथ में है। अतः इन लोगों के हाथ में अधिक भूमि न रहने देने के लिए टाइबेरियस ने उस पुराने नियम को फिर चालू किया जो कुछ एकड़ों से अधिक भूमि पर अधिकार नहीं मानता था। इस नियम के फिर चालू होने से धनी लोग बहुत बिगड़े और उन्होंने दंगा-फसाद कराना शुरू किया। इसके बाद उन्होंने कुछ गुंडों को टाइबेरियस की हत्या के लिए तैयार किया। जब टाइबेरियस असेम्बली में जा रहा था, उसी समय उस पर हमला किया गया और उसे इतना मारा गया कि वह मर गया। ग़रीब किसानों की सहायता करने का यह फल टाइबेरियस को मिला।

ग़रीबों का कानून—दस वर्ष बाद टाइबेरियस के भाई गेयस (Gaius) ने सुधार करने की कोशिश की। उसने 'गरीबों का कानून' बनाया। इस कानून से ग़रीबों को सहायता मिली, लेकिन धनी लोग असंतुष्ट हुए। गेयस ने ग़रीबों के लिए निवास-स्थान बनवाये। इस प्रकार के कानून बन जाने से पेशेवर भिखारियों की संख्या बढ़ चली और जो वास्तविक दीन-दुखिया थे, उन्हें कभी कभी सहायता मिल न पाती थी। मगर फिर भी गेयस ने जो प्रयास किया, वह सराहनीय था और इसी के फल-स्वरूप रोम के धनिक वर्ग ने गेयस की हत्या कराई। गेयस के जो दूसरे साथी थे उन्हें भी समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार रोम के समाज में एक ओर शोषक वर्ग था और दूसरी ओर शोषित वर्ग। इन दो वर्गों के बीच समझौते के लिए जो प्रयत्न किये गये उनकी क्या दशा हुई इससे भी हम परिचित हुए। इसके बाद रोम के रंगमच पर मैरियस, सल्ला, पाम्पे, सीजर, आक्टाविनस, और आगस्टस आदि रोम के अधिष्ठाता हुए।

बाहरी उन्नति, भीतरी अवनति—रोम के अधिष्ठाताओं ने रोमी साम्राज्य का बड़ा विस्तार किया और आगस्टस के काल में यह विस्तार अपनी चरम सीमा पर भी पहुँच गया था। आगस्टस ने शांतिपूर्वक शासन करना चाहा और कुछ दिनों के लिए रोमी साम्राज्य का विस्तार रुक भी गया। लेकिन इस बाहरी उन्नति के होते हुए भी रोमी समाज में भीतरी अवनति हो रही थी। इसके कई कारण थे। रोम के लोग लगभग दो सौ वर्षों से युद्ध में लगे हुए थे। इस युद्ध में रोम के योग्य युवक मरते रहे। इसलिए आनेवाले समय में योग्य व्यक्तियों की कमी हो गई। दूसरी बात अवनति की यह हुई कि

किसान सैनिक भी बनते थे। अतः जब वे सेना में चले गये, तब धनिकों ने गुलामों की मेहनत से खेती करके धीरे-धीरे कृषि-कार्य पर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार किसान-सैनिक युद्ध से वापस आने पर बेकार हो गये और भूखों मरने लगे क्योंकि वे गुलामों से अधिक काम नहीं कर सकते थे। यदि रोम में दास-प्रथा न होती तो वहाँ के किसान सुखी रहते। लेकिन दास-प्रथा के कारण रोमी समाज में एक ओर धनी लोग बिना मेहनत की रोटी खाते और आराम करते थे और दूसरी ओर मेहनत करके भी किसान भूखों मरते थे। इन सब का परिणाम यह हुआ कि रोमी समाज में शांति का नाम न था। चारों ओर भूख, बीमारी और बेकारी फैल रही थी और इसके फलस्वरूप दंगा-फसाद और हिंसा-हत्या की बाढ़ हो चली। इस प्रकार समाज के भीतर अवनति के बीज फूल-फल रहे थे और इन्हीं के कारण रोमी-साम्राज्य का पतन हुआ। यह पतन काफी दिनों के बाद हुआ क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि रोम एक दिन में नहीं बना था। जिस प्रकार रोमी साम्राज्य के विस्तार में सैकड़ों वर्ष लग गये थे, उसी प्रकार इसके पतन में भी काफी समय लगा।

लेकिन जब किसी वस्तु का नाश होता है तो उसमें भविष्य के निर्माण के बीज भी छिपे होते हैं। रोम के पतन के साथ ईसाई धर्म के आरम्भ की कहानी भी शुरू होती है जिससे हम ईसाई शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करते समय परिचित होंगे। अब हम रोमी समाज का एक काल्पनिक चित्र बना सकते हैं और शिक्षा के स्वरूप को भली-भाँति समझ सकते हैं। लेकिन यह चित्र तब तक अधूरा रहेगा जब तक हम रोम के धर्म, विश्वास और दर्शन से परिचित न हो लें। जैसा कि हम

जानते हैं, यूनानी शिक्षा पर यूनानी दर्शन का बड़ा प्रभाव है। इसी प्रकार रोमी शिक्षा पर रोम के धर्म, विश्वास और दर्शन का भी प्रभाव है। अतः रोम की सांस्कृतिक भूमिका के सिलसिले में रोम के धार्मिक विकास का ज्ञान भी आवश्यक है।

रोम की धार्मिक भूमिका—यह तो हम जानते ही हैं कि रोम में अधिकतर लोग पीड़ित और शोषित थे। केवल कुछ धनी लोग ही सुखी थे। लेकिन साथ ही सुखी धनी लोग यह भी जानते थे कि उनके लिए प्रत्येक क्षण में संकट उपस्थित है। इसलिए वास्तविक शांति किसी को न थी। इस शांति के लिए देवी-देवताओं की पूजा होने लगी। लेकिन इस पूजा में यह विशेषता थी कि जहाँ पहले समाज के हित के लिए कामना की जाती थी, वहाँ अब व्यक्तिगत पूजा होने लगी। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख की चिंता करने लगा और समाज को भूल गया। इस सम्बन्ध में हमें स्मरण रखना चाहिए कि रोमी लोगों पर यूनान का बड़ा प्रभाव पड़ा था। इन लोगों ने यूनान से शिक्षा, दर्शन ही नहीं सीखा, वरन् धार्मिक भावना भी ग्रहण की। लेकिन स्थान-परिवर्तन का प्रभाव तो पड़ता ही है। इसलिए रोमी समाज के अनुकूल इनमें संशोधन भी हुआ, मगर मूल-भावना वही थी। सभी अपने-अपने दुःखों का निवारण देवताओं से चाहते थे।

यूनानी प्रभाव—रोमी शिक्षा की सांस्कृतिक भूमिका में यूनानी प्रभाव भी है। अतः उसे भी भली भाँति समझ लेना चाहिए। इस दृष्टि से रोम और यूनान के लोगों में तात्त्विक भेद यह था कि यूनानी लोग जिज्ञासु और अनुभवी थे, लेकिन रोमी लोग इसमें पिछड़े हुए थे। उनमें यूनानी लोगों की न तो कल्पना ही

थी और न सौंदर्यानुभूति। अतः जब रोमी लोग यूनानियों के सम्पर्क में आए तो उन्होंने इन बातों को सीखा। कई रोमी लोगों ने यूनानी काव्य, दर्शन और भाषण-कला का गहन अध्ययन किया। रोम के प्रसिद्ध विद्वान् सिसरो (Cicero) ने यूनानी दार्शनिकों और विशेषकर प्लैटो के सिद्धान्तों को लैटिन भाषा में अनूदित किया और उनके आधार पर रचनायें कीं। इसके अतिरिक्त रोम के लोगों को यूनानी नैतिकता बहुत पसन्द आई। इसका कारण रोम में अनुशासन और नियम-पालन की प्रवृत्ति थी। यूनानी नीति-शास्त्र Ethics) का अध्ययन सिनेका (Seneca) ने विशेष रूप से किया। रोमी सम्राट मारकस आरलियस (Marcus Aurelius) को यूनानी विद्वान् ज़ेनो (Zeno) का नीति-शास्त्र अत्यन्त प्रिय था। अतः सम्राट ने भी ज़ेनो से प्रभावित होकर नीति-शास्त्र की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि रोमी लोगों ने यूनानियों से जिज्ञासा की प्रवृत्ति और नीति-शास्त्र सीखा।

नीति-शास्त्र के अतिरिक्त रोम के लोगों को यूनानी काव्य और इतिहास भी प्रिय था। प्रसिद्ध रोमी कवि वर्जिल (Vergil) ने होमर के महाकाव्य का अध्ययन किया और इसके पश्चात् स्वयं महान् काव्य की रचना की। जिस प्रकार यूनानी साहित्य में होमर का स्थान है, उसी प्रकार लैटिन में वर्जिल का। अतः हम देखते हैं कि लैटिन साहित्य पर यूनानी साहित्य का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहा। यूनानी साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करके लैटिन साहित्य फूलता-फलता रहा। इसीलिए कुछ विद्वानों का विचार है कि लैटिन साहित्य में वह मौलिकता नहीं है, जो यूनानी साहित्य में है। लेकिन इसका कारण लैटिन स्वभाव है। लैटिन अथवा रोमी लोगों की यह विशेषता थी कि वे अन्तर्मुखी नहीं थे।

वे अपने सुख की खोज भीतर नहीं करते थे, वरन् अपने वातावरण में करते थे। यूनानी लोगों ने अपने अन्तर को विशेष रूप से देखा। लेकिन रोमी लोगों ने अपने बाहरी जगत् का अध्ययन किया और परिश्रम द्वारा सुख की सामग्री जुटाने का प्रयास किया। रोम और यूनान की सभ्यता में यह तात्विक भेद है। श्री एच० जी० गुड के शब्दों में रोमी लोगों ने विचार तथा कला-क्षेत्र में नहीं, वरन् कर्म-क्षेत्र में उत्तम कार्य किया है।* श्री गुड का यह कथन पूर्ण सत्य है। रोम की संस्कृति कर्मप्रधान थी और यूनान की विचार-प्रधान। इसीलिए रोम के लोगों ने बड़ी इमारतों और सड़कों के निर्माण में अद्भुत दक्षता का प्रदर्शन किया। उनकी यह कर्मशीलता और व्यावहारिकता हमें शिक्षा-क्षेत्र में भी दिखाई पड़ेगी। अतः अब हमें रोमी-शिक्षा के स्वरूप से परिचित होना चाहिए।

---

* The Romans excelled as doers rather than as thinkers or artistic creators—H. G. Good.

रोमी-शिक्षा का स्वरूप

व्यावहारिक बुद्धि—रोमी शिक्षा के स्वरूप में सर्वप्रधान विशेषता 'कर्मशीलता' अथवा व्यावहारिकता है। रोम के लोग जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यूनान से प्रभावित थे। उन्होंने यूनान की भाँति अपने 'नगर-राज्य' भी बनाये, लेकिन वे अन्तर्मुखी नहीं थे। वे अपने सुख की सामग्री बाहरी जगत् में खोजते थे। अतः वे सदा नये-नये उपाय ढूँढ़ते रहते और उनके द्वारा निर्माण-कार्य करना चाहते थे। इसलिए उनमें कवि की कल्पना नहीं वरन् इंजीनियर की व्यावहारिक बुद्धि का विकास हुआ। अतः उनकी शिक्षा के स्वरूप में हमें व्यावहारिक बुद्धि के विकास का प्रयास दिखाई पड़ता है।

उचित अनुमान—रोमी शिक्षा के स्वरूप में व्यावहारिकता का दूसरा अंश 'उचित अनुमान' दिखाई पड़ता है। रोमी लोगों की, व्यावहारिक होने के नाते यह विशेषता थी कि वे जिस वस्तु को बनाने अथवा जिस कार्य को करने जाते थे, उसके सम्बन्ध में सही अनुमान कर सकते थे। दूसरे शब्दों में उनकी कल्पना भी व्यावहारिक थी। वे अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा किसी भी कार्य के सम्बन्ध में उचित अनुमान कर लेते थे और फिर उन्हें किसी कठिनाई का अनुभव नहीं होता था। उदाहरण के लिए जब एक इंजीनियर किसी पुल का निर्माण शुरू करता है, तब वह गणित की सहायता से पुल का पूरा नक़शा बना लेता है। इस प्रकार वह नक्शे के आधार पर पुल के सम्बन्ध में

निश्चित धारणा प्राप्त करता है। लेकिन यदि इंजीनियर बिना निश्चित धारणा पर पहुँचे ही पुल का बनाना शुरू कर दे, तो यह पूर्ण संभव है कि पुल ठीक-ठीक न बन पावे। इसीलिए जो भी व्यावहारिक लोग होते हैं, वे किसी भी काम को करने से पहले, उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करके 'उचित अनुमान' लगा लेते हैं। ऐसा करने से गलती होने की तनिक संभावना नहीं होती। रोमी लोगों में व्यावहारिकता के कारण 'उचित अनुमान' का गुण भी आ गया था। अतः वे रोमी शिक्षा को ऐसा बनाना चाहते थे जो व्यावहारिक बुद्धि के साथ उचित अनुमान का भी विकास करे।

कार्य के प्रति श्रद्धाभाव—रोमी शिक्षा के स्वरूप पर रोमी धार्मिक भावना का भी प्रभाव पड़ा। रोम के लोग व्यावहारिक होने के नाते देवी-देवताओं की पूजा इसलिए करते थे, कि उनके कार्य सफलतापूर्वक समाप्त हों। अतः उनके जितने भी कार्य थे, उनके लिए अलग-अलग देवता भी निश्चित थे। उदाहरण के लिए कृषि-कार्य के जितने भी अंग थे, उनसे सम्बन्धित देवता भी थे। हमें रोम में जोताई के देवता, बोआई के देवता, निराई के देवता आदि मिलते हैं। इसी प्रकार अन्य कार्यों के भी देवतागण थे। इन देवताओं की पूजा करके रोमी लोग, सफलता प्राप्त करना चाहते थे। दूसरे शब्दों में रोम के लोगों की धार्मिक भावना भी व्यावहारिक थी। वे देवताओं को कार्य की पूर्णता और सफलता के लिए प्रसन्न करते थे। अतः उनके सभी कार्य एक प्रकार से धर्म से सम्बन्धित थे और बिना विभिन्न देवताओं की पूजा-पाठ किये कोई कार्य की सफलता की आशा नहीं कर सकता था। फलस्वरूप रोमी शिक्षा में इस बात की भी कोशिश की गई कि जितने भी कार्य किए जाँय उनके प्रति सफलता के लिए

धार्मिक भावना भी हो। इसका प्रभाव यह हुआ कि रोमी शिक्षा द्वारा कर्त्तव्य-परायणता, और सभी कार्यों को श्रद्धा तथा धार्मिक भाव से करने के योग्य बालकों को बनाया गया। जब मनुष्य कार्य के प्रति इस प्रकार के विचार रखता है तब उसका प्रभाव कार्य करनेवालों, विशेषकर कुटुम्ब और देश के लोगों पर भी पड़ता है। अतः रोमी शिक्षा के स्वरूप में हमें कार्य के प्रति श्रद्धा-भाव, आदि गुणों के विकास का प्रयास रोमी धार्मिक भावना के कारण मिलते हैं।

अधिकार और कर्त्तव्य—रोम के लोगों को अधिकार और कर्त्तव्य का पूर्ण ज्ञान था क्योंकि रोमी शासकों ने व्यवस्था और विधानों द्वारा इन्हें स्पष्ट कर दिया था। ऐसा करने का कारण भी था। सर्वप्रथम कारण यह था कि रोम के लोग व्यावहारिक थे। वे अधिक सोचना-विचारना नहीं जानते थे। उन्हें तो साफ-साफ मालूम होना चाहिए कि उनके अधिकार क्या हैं और कर्त्तव्य क्या हैं। जब उन्हें एक बार यह मालूम हो गया, तो पूरी शक्ति लगाकर वे अधिकार और कर्त्तव्य की ओर ध्यान देते थे। अतः शिक्षा के द्वारा अधिकार और कर्त्तव्यों का स्पष्ट ज्ञान भी कराया जाता था, जिससे कि लोग भली भाँति समझ लें कि जो भी अधिकार उन्हें मिलते हैं, वे उन कर्त्तव्यों के कारण हैं, जिन्हें कि वे पूरा करते हैं। दूसरे शब्दों में यूनानी शिक्षा यह स्पष्ट कर देना चाहती थी कि कोई भी अधिकार बिना कर्त्तव्य-पालन के प्राप्त नहीं होता। जब मनुष्य कर्त्तव्य-पालन करता है, तब उसे अधिकार प्राप्त होते हैं। बिना कर्त्तव्य-पालन के अधिकार की माँग अनुचित है। रोम के इस विधान का प्रभाव आनेवाले समय पर पड़ा और आज भी अधिकार तथा कर्त्तव्य के सम्बन्ध में लोगों के यही विचार हैं।

निश्चित कर्त्तव्यों की शिक्षा—अधिकार और कर्त्तव्य के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्पष्ट करने के बाद रोमी शिक्षा द्वारा निश्चित कर्त्तव्यों का ज्ञान भी कराया जाता था। उदाहरण के लिए रोम के विधान में पाँच प्रकार के अधिकारों का उल्लेख एंटोनाइन काल के दूसरी शताब्दी के अंत में मिलता है। ये अधिकार इस प्रकार थे:—(१) पिता का पुत्र पर अधिकार, (२) पति का पत्नी पर अधिकार, (३) स्वामी का दास पर अधिकार, (४) स्वतंत्र व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर कानून द्वारा अधिकार और (५) सम्पत्ति पर अधिकार।* इन पाँच अधिकारों में व्यक्ति का अपने परिवार और समाज के प्रति कर्त्तव्य निहित है। जब पिता को अपने पुत्र पर अधिकार दिया गया तो उसके साथ कुछ कर्त्तव्यों का पालन भी आवश्यक था। अतः एक रोमी पिता अपने पुत्र का बड़ा ध्यान रखता था। आरम्भ में जब पुत्र का जन्म होता था तब वह पिता के पैर के पास एक प्रकार की धार्मिक पूजा के लिए लाकर रख दिया जाता था। यदि पिता उस बालक को उठाकर गोद में ले लेता तो इसका अर्थ यह होता कि बालक को परिवार में स्वीकार कर लिया गया और पिता उसके प्रति अपने अधिकारों-कर्त्तव्यों का पालन करेगा। लेकिन यदि बालक किसी प्रकार से अस्वस्थ या कुरूप हुआ तो पिता उसे गोद में नहीं लेता था और वह बालक कुरूप स्पार्टी बालक की भाँति मृत्यु के मुख में डाल दिया जाता था। यदि किसी प्रकार उसकी जान बच भी गई तो उसे दास का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इस प्रकार के व्यवहार को हम अमानु-

* A Text-book in the History of Education—Page 180.

षिक ही कहेंगे। लेकिन उस समय की यह प्रथा राज्य-हित के लिए थी। रोम के लोग अस्वस्थ और बेकार रहनेवालों को नहीं चाहते थे। इसलिए आरम्भ में ही इस प्रकार की व्यवस्था कर दी गई थी।

अधिकारों और कर्त्तव्यों के रूप केवल पारिवारिक जीवन में ही स्पष्ट नहीं थे, वरन् उन्हें समाज के अन्य क्षेत्रों में भी व्यक्त किया गया। समाज के आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में रोमी नागरिक के क्या कर्त्तव्य हैं, यह सभी को स्पष्ट रूप से ज्ञात थे। लेकिन किसी भी नागरिक के लिए सभी क्षेत्रों में अपने कर्त्तव्यों का पालन करना सरल नहीं था। आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कर्त्तव्यों के पालन के नियम थे और उन नियमों का अध्ययन-मनन आवश्यक था। अतः रोमी शिक्षा में कर्त्तव्यों के ज्ञान का प्रमुख स्थान था।

गुणों का विकास—रोमी समाज में कुछ ऐसे गुण थे जिनका प्रत्येक व्यक्ति में होना अपेक्षित था। उदाहरण के लिए प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह देवताओं के प्रति श्रद्धा-भाव रखेगा। यह श्रद्धा-भाव माता-पिता के प्रति भी होता था क्योंकि उन्हें भी पूज्य समझा जाता था। इसके अतिरिक्त रोमी व्यक्ति में विनीत-भावना भी होनी आवश्यक थी। रोमी समाज में कोई व्यक्ति डींग हाँकना पसन्द नहीं करता था। जो ऐसा करता था, उसे असभ्य समझा जाता था। अतः सभी इस बात की कोशिश करते थे कि नम्रता और विनीत-भावना (Modesty) का विकास हो। लेकिन यह नम्रता उनकी वीरता और पुरुषार्थ में किसी प्रकार बाधक नहीं होती थी। जब अवसर आता था तब रोमी व्यक्ति पूर्ण दृढ़ता से कार्य करता था। दूसरे

शब्दों में रोमी नम्रता और विनीत-भावना रोमी साहस और वीरता के समकक्ष थी और यथावसर इनका कार्य था। अतः इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। रोमी शिक्षा द्वारा इन गुणों के समुचित विकास की ओर ध्यान दिया जाता था।

लेकिन यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि कर्त्तव्य के क्षेत्र में मनुष्य के सभी गुण आ जाते हैं। जो मनुष्य कर्त्तव्य-पालन करना चाहता है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह सच बोले, सोच-विचार कर काम करे, उद्दंड न हो और साहसी तथा वीर हो। कोई भी कार्य हो जब तक उसे सचाई से और निर्भय होकर नहीं किया जाता, तब तक उसकी अच्छाई में संदेह होता है। अतः जब रोमी शिक्षा द्वारा गुणों के विकास की ओर ध्यान दिया गया, तो उसका उद्देश्य यह था कि लोगों में कर्त्तव्य की भावना भली भाँति विकसित हो जाय।

कार्य द्वारा शिक्षा—आधुनिक शिक्षा में कार्य का विशेष स्थान है। कार्य द्वारा शिक्षा देना कितना हितकर है, इसे हम सभी मानते हैं। रोमी शिक्षा में भी कार्य द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की गई। लेकिन यह व्यवस्था बालक के विकास की दृष्टि से उतनी नहीं की गई जितनी कि जीविकोपार्जन के उद्देश्य से। अतः विद्यार्थी को उन सभी कार्यों की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी जो उसके जीवन में सहायक होते थे। उस समय रोमी लोगों का प्रधान कार्य कृषि था। इसलिए शिक्षा में कृषि-कार्य की प्रधानता थी और कृषि के जितने भी आवश्यक अंग थे, उन सब को विद्यार्थी सीखते थे।

शिक्षालय और समाज—रोमी शिक्षा में समाज का

विशेष स्थान था। इसका कारण यह था कि पिता को अपने पुत्र की शिक्षा का सुंदर प्रबन्ध करना पड़ता था। इसलिए बालक की शिक्षा घर से ही शुरू हो जाती थी। रोमी लोग यह जानते थे कि बालक कुछ समय के लिए शिक्षालय में रहता है। इसलिए जब तक उसकी शिक्षा का प्रबन्ध घर पर भी न हो, तब तक वह भली भाँति शिक्षित नहीं हो सकता। अत: बालक के माता-पिता उसकी शिक्षा की देख-भाल और व्यवस्था निरन्तर करते रहते थे। दूसरे शब्दों में शिक्षालय और समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध था और इस प्रकार रोमी समाज ही शिक्षालय के रूप में परिवर्त्तित हो गया था। इसका प्रधान कारण पिता का पुत्र पर अधिकार था और इसी अधिकार के कारण शिक्षा का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्री पाल मनरो ने रोम के कवि होरेस (Horace) का जिसका जन्म ईसा से ६५ वर्ष पूर्व हुआ था, कथन उद्धृत किया है। होरेस अपनी शिक्षा के विषय में कहता है—"यदि मेरा जीवन पवित्र और निर्दोष है तथा मेरे मित्र मुझसे प्रम रखते हैं, तो इसका श्रेय मेरे पिता को है। मेरे पिता ग़रीब किसान होने के कारण उस शिक्षालय में मुझे नहीं भेज सके जहाँ अमीरों के लड़के शुल्क देकर पढ़ते थे। लेकिन उन्होंने मुझे रोम ले जाकर उन कलाओं की शिक्षा प्रदान की जिन्हें किसी बड़े सरदार का पुत्र भी सीखने को लालायित होता। वे हमारे अध्ययन के सम्पूर्ण काल में संरक्षक की भाँति सदा साथ रहे।"

होरेस के इस कथन में हमें रोमी शिक्षा के स्वरूप का दर्शन होता है। जब हम रोमी शिक्षा के ऐतिहासिक कालों का अध्ययन करेंगे तब हमें यह स्वरूप और भी स्पष्ट होगा।

रोमी शिक्षा का प्रथम काल

अध्ययन के लिए रोमी शिक्षा के इतिहास को साधारणतः चार भागों में बाँटा जाता है। कोई कोई विद्वान् रोमी शिक्षा के इतिहास के पाँच काल भी मानते हैं। लेकिन प्रसिद्ध इतिहास लेखक पाल मनरो चार काल ही के पक्ष में हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि एक काल के अंत और दूसरे काल के आरंभ की तिथि निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। अतः जब हम इतिहास के विभिन्न कालों का अध्ययन करेंगे तो यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जायगा। पर साधारणतः रोमी शिक्षा के इतिहास के प्रथम काल का आरम्भ रोम नगर की स्थापना से किया जाता है। रोम की स्थापना ईसा से ७५३ वर्ष पूर्व हुई थी। प्रथम काल का अंत ईसा से २५० वर्ष पूर्व में मानते हैं। इस प्रकार रोमी शिक्षा का प्रथम काल ७५३ ई० पू० से २५० ई० पू० तक माना जाता है।

प्रथम काल का समाज—रोमी-शिक्षा के प्रथम काल में समाज की दशा का अध्ययन आवश्यक है। प्रथम काल का रोमी समाज बर्बरता को छोड़कर सभ्यता के पथ पर आ गया था। लेकिन उनका इतना विकास नहीं हो गया था कि यूनानियों की भाँति नाट्य-साहित्य और दर्शन की रचना करते। उस समय समाज में व्यावहारिकता का बोल-बाला था। लोग वाणिज्य और कृषि में व्यस्त थे और साथ ही नये नये देशों को जीतने की भी तैयारी और कोशिश होती रहती थी।

बारह नियम (Twelve Tables)—प्रथम काल में लोगों का रहन-सहन सादा था और उन्हें जीवन की सुकुमार वृत्तियों की ओर ध्यान देने का अवसर न था। इसका कारण दर्शन का अभाव और कार्य की अधिकता थी। लेकिन प्रथम काल में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात हुई वह बारह नियमों (Twelve Tables) की रचना थी। विद्वानों का विचार है कि पश्चिमी सभ्यता में न्याय के दर्शन में इन बारह नियमों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रोमी लोग व्यावहारिक होने के नाते नियम-पालन की ओर अधिक ध्यान देते थे। इसलिए उन्होंने बारह नियमों की रचना को आवश्यक समझा। अतः रोम के दस विद्वानों द्वारा ईसा से पाँचवीं सदी के मध्य में, इन नियमों को लिखित रूप दिया गया। ऐसा करते समय उन्होंने यूनानी नियमों का भी अध्ययन किया और रोमी आवश्यकतानुसार बारह नियमों को लिखा। न्याय के इन बारह नियमों द्वारा अदालती कार्रवाई, गवाही, सबूत, न्यायाधीश द्वारा किसी नये कानून का न बनाना, धारासभा और सम्राट द्वारा नये नियमों का बनाया जाना, न्याय के आधार पर नियम बनाना, न्यायालय में सबको निर्भय करना, सबके साथ समान व्यवहार होना, घूसखोरी बंद करना, अदालती कार्रवाई संयम और गंभीरता से होना आदि की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया। दूसरे शब्दों में न्याय को केवल न्याय ही नहीं माना, वरन् इस बात का प्रयास किया कि न्याय न्याय प्रतीत भी हो।

पिता-पुत्र का सम्बन्ध—इसके अतिरिक्त बारह नियमों में से कुछ नियम ऐसे भी थे जो आर्थिक और पारिवारिक समस्याओं से सम्बन्ध रखते थे। उदाहरण के लिए एक नियम यह था कि 'पिता अपने पुत्र को किसी का दास बनाकर बेच सकता है;

परन्तु इसके पश्चात् पुत्र पिता के अधिकार से मुक्त हो जायगा। पिता के मरने के पश्चात् सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वह होगा जिसका कि नाम वसीयतनामें में लिखा हो।' इस नियम को ध्यान-पूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दासों की बिक्री होती थी और पिता को अपनी सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। पिता की इच्छा के विरुद्ध कोई पुत्र सम्पत्ति नहीं पा सकता था। इस प्रकार पुत्र अपने पिता की आज्ञा-पालन करता और उसकी इच्छानुसार कार्य करता था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि पिता के मन में पुत्र के प्रति स्नेह न था। स्नेह अवश्य था और हर एक पिता अपने पुत्र की उन्नति की कामना करता था।

आर्थिक व्यवस्था—भूमि पर अधिकार के सम्बन्ध में यह नियम था कि 'किसी भी नागरिक को यह अधिकार न होगा कि वह बिना कर के भूमि का मालिक हो सके—चाहे वह कितने ही अधिक समय तक उसके पास रही हो।' साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि कोई विदेशी रोम में भूमि का मालिक न हो सकेगा। इस प्रकार समाज की आर्थिक व्यवस्था को भी ठीक किया गया। लोगों पर ऋण की वृद्धि रोकने के लिए यह भी नियम बना दिया गया कि 'ऋण का सूद दस प्रतिशत से अधिक न होगा।'

शिक्षा के प्रथम काल में रोम के लोग अधिकतर युद्ध में व्यस्त रहे। लेकिन युद्ध में विजयी होने के लिए वे अपना संगठन भी करते गये। बारह नियमों के द्वारा उनका सामाजिक संगठन काफी अच्छा हो चला। इसके फलस्वरूप उनके स्वभाव में भी परिवर्तन हुआ। डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार ने 'रोम का इति-हास' में लिखा है—"रोमनों ने बहुत बड़ी बड़ी सड़कें बनाई थीं। उनकी बनाई हुई सड़कें ऐसी अच्छी और मजबूत होती थीं कि

बहुत सी सड़कें अब तक चली आती हैं। ······ युद्धों के समय रोम अपनी पूरी उन्नति और शक्ति पर न था, क्योंकि रोमन धन की दृष्टि से अभी तक समृद्ध न थे, अतः उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। ······ रोम के सेनापति तथा राजनीतिज्ञ एक साधारण नागरिक की भाँति रहा करते थे। उनको यदि कोई उपहार भेजता तो वे उसे नहीं लेते थे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम काल के लोग किस प्रकार युद्ध में लीन रहते थे और अपने को लोभ आदि से मुक्त रखने का प्रयास करते थे।

शिक्षा का उद्देश्य—रोमी शिक्षा के प्रथम काल का उद्देश्य (१) सैनिक दक्षता और दैनिक योग्यता प्रदान करना, और (२) युद्ध-प्रेम तथा देशभक्ति का विकास करना था। उस समय युद्ध करना पड़ता था। अतः सभी को युद्ध के योग्य बनाना शिक्षा का उद्देश्य था। रोमी लोगों की प्रवृत्ति व्यावहारिक थी। वे सभी बातों को उपयोगिता की दृष्टि से देखते थे। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य भी (३) उपयोगिता और व्यावहारिकता का विकास करना था। साथ ही राज्य की रक्षा और विस्तार के लिए यह भी आवश्यक था कि प्रत्येक व्यक्ति में राज्य-भक्ति हो। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य (४) राज्य-भक्ति का विकास भी करना था। पारिवारिक जीवन का महत्त्व भी था। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह एक योग्य, पिता, पति अथवा पुत्र होगा। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य (५) दैनिक जीवन की कुशलता प्रदान करना था। तात्पर्य यह है कि प्रथम काल के शिक्षा के उद्देश्य समाज के विकास, तथा संगठन में सहायक और बारह नियमों के अनुरूप होते थे।

शिक्षा का संगठन—प्रारम्भिक शिक्षा का केन्द्र घर था। पिता अपने पुत्र को शिक्षा देता था। पिता जहाँ भी जाता, जो भी काम करता, पुत्र उसे देखता और भली भाँति समझने का प्रयास करता था। इसके अतिरिक्त माता को भी बालक की शिक्षा में भाग लेना पड़ता था। आरम्भ में बालक का पालन-पोषण करते समय माता इस बात का ध्यान रखती कि बालक में अच्छी आदतों का विकास हो। इस प्रकार प्रथम काल के पूर्व भाग में शिक्षा का संगठन माता-पिता के ऊपर निर्भर था। लेकिन प्रथम काल के अंतिम भाग में ईसा से २७२ वर्ष पूर्व स्कूलों की प्रथा चल पड़ी। स्कूलों की स्थापना में यूनानी कैदी बड़े सहायक हुए। जब रोमी लोगों ने यूनान के टेरेंटम नगर पर अधिकार किया तो उन्होंने कई विद्वानों को कैदी बनाकर रोम बुलाया। इन विद्वानों ने आकर रोमी शिक्षा के संगठन में सुधार किया और स्कूलों की व्यवस्था की।

लेकिन फिर भी शिक्षा का संगठन प्रधान रूप से घर पर आधारित था और माता-पिता का उसमें विशेष स्थान था। जब रोम पर यूनानी प्रभाव पड़ा, तब संगठन में परिवर्त्तन शुरू हुआ। संगठन का परिवर्त्तित रूप रोमी शिक्षा के द्वितीय काल में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

शिक्षा के विषय—आरम्भ में बालकों की शिक्षा के विषय ऐसे थे जो उनके शारीरिक और नैतिक विकास में सहायक होते थे। माता ही प्रारम्भिक विषयों की शिक्षा प्रदान करती थी। इसके बाद जब बालक बड़ा होता था, तब वह अपने पिता के कार्यों को देखता और सीखता था। लड़कियों को गृह-विज्ञान तथा कताई-बुनाई की शिक्षा दी जाती थी। लिखने-पढ़ने की

शिक्षा भी बालक संभवतः अपने माता-पिता से प्राप्त करते थे। साथ ही उन्हें बारह नियमों तथा रोम के वीरों की कथाओं को भी कंठस्थ करना पड़ता था। व्यायाम और खेल-कूद भी शारीरिक विकास के लिए शिक्षा के आवश्यक विषय थे। जैसा कि हम जानते हैं, रोमी लोग प्रत्येक कार्य से किसी न किसी देवता का सम्बन्ध जोड़ देते थे। अतः शिक्षा में विभिन्न कार्यों के देवताओं की पूजा के विषय भी सम्मिलित किए गये। जहाँ तक कलात्मक विषयों का सम्बन्ध है, उसकी ओर ध्यान नहीं के बराबर था। इसका कारण रोमी लोगों का व्यावहारिक दृष्टिकोण है। उन्हें वही काम अच्छा लगता था, जिससे कि लाभ की आशा थी। अतः कलात्मक विषयों का शिक्षा में अभाव था।

शिक्षा की पद्धति—रोमी शिक्षा को पद्धति प्रधानतः 'करके सीखने' और 'अनुकरण' की थी। रोमी लोग कर्मशील होने के कारण किसी ऐसी पद्धति का शिक्षा में अनुसरण न कर सके जिसमें कल्पना की अधिकता हो। अतः उन्होंने शिक्षा की व्यावहारिक पद्धति को अपनाया। जो भी सीखो, करके सीखो। इसके अतिरिक्त 'अनुकरण' का भी प्रयोग पद्धति में किया गया। अतः विद्यार्थी अपने पिता और अन्य बड़े व्यक्तियों का अनुकरण करके चरित्र का विकास करता था। यह पद्धति एक प्रकार से अच्छी भी थी क्योंकि बालक के सामने एक जीवित आदर्श होता था। वह अपने 'आदर्श व्यक्ति' का भली-भाँति अध्ययन करता और अपने को उसी के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता था। इस प्रकार शिक्षा की पद्धति व्यावहारिकता और अनुकरण पर आधारित थी, जो देश और काल के पूर्णतः अनुकूल थी।

समाज पर प्रभाव—प्रथम काल की शिक्षा का समाज पर

क्या प्रभाव पड़ा? इस दृष्टि से जब हम सोचते हैं, तब हमें ज्ञात होता है कि शिक्षा अपने उद्देश्यों के अनुरूप समाज के लिए योग्य सदस्य और सैनिक तैयार कर सकी। शिक्षा के फलस्वरूप व्यक्तियों में अनुशासन और श्रद्धा-भाव विकसित हुआ। प्रत्येक व्यक्ति अपने से बड़ों, देवताओं और नियमों को आदर से देखता था और इनकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था। इसके अतिरिक्त रोमी लोगों में वीरता, साहस और सैनिक दक्षता के विकास में भी शिक्षा सहायक हुई। पर इस शिक्षा में कुछ त्रुटियाँ भी थीं। लोगों में युद्ध-प्रेम इतना अधिक था कि वे विजयी होने के लिए बर्बर और निर्दयी भी हो जाते थे। शिक्षा में कलात्मक विषयों के अभाव के कारण रोमी लोगों में उच्च विचारों और आदर्शों की कमी थी। इस प्रकार प्रथम काल की रोमी शिक्षा एक सीमित समाज के संगठन में सहायक अवश्य हुई लेकिन वह उस शक्ति को उत्पन्न न कर सकी जो रोमी लोगों की संस्कृति को परिष्कृत करती। अतः जब रोमी साम्राज्य का विस्तार हुआ तब रोमी लोगों का पतन भी आरम्भ हुआ। इसका प्रधान कारण उच्च आदर्शों और विचारों का अभाव था।

———

रोमी शिक्षा का द्वितीय काल

परिवर्त्तन काल—रोमी शिक्षा का द्वितीय काल ईसा से लगभग २५० वर्ष पूर्व से लेकर ५० वर्ष पूर्व तक माना जाता है। इस काल में रोमी शिक्षा पर यूनानी प्रभाव पड़ना शुरू हुआ था। इसलिए इसे परिवर्त्तन काल भी कहते हैं। इस परिवर्त्तन काल में यूनानी विद्वानों ने बड़ा काम किया। जैसा कि हमें मालूम है, जब रोमी लोगों ने यूनानी नगरों पर अधिकार किया तब उस समय उन्होंने ऐसे यूनानी कैदी भी बनाये जो बड़े विद्वान् थे। अतः जब इन विद्वान् कैदियों को रोम लाया गया, तब इनसे शिक्षा में बड़ी सहायता मिली।

विचारों और आदर्शों पर प्रभाव—रोमी शिक्षा के द्वितीय काल में रोमी साम्राज्य का विस्तार हो रहा था। प्रथम काल की भाँति रोमी राज्य अब सीमित न था। अतः जब रोमी साम्राज्य का विस्तार आरम्भ हुआ, तब यह स्वाभाविक था कि नये वातावरण और नये लोगों के सम्पर्क का प्रभाव रोमी जीवन पर पड़े। इतना ही, साम्राज्य के हित की दृष्टि से यह भी आवश्यक था कि रोमी लोग सांस्कृतिक आदान-प्रदान करें। इस प्रकार रोमी लोगों ने यूनानी लोगों की संस्कृति, उनके आदर्शों और विचारों का अध्ययन किया और उस अध्ययन के फलस्वरूप अपने विचारों और आदर्शों को पहले से उन्नत बनाया। रोमी-शिक्षा के प्रथम काल में हमने देखा था कि रोमी लोगों में विचारों और आदर्शों की उच्चता का अभाव था। इसका कारण

उनका सीमित राज्य और सीमित दृष्टिकोण था। लेकिन द्वितीय काल में नये लोगों के सम्पर्क के कारण रोमी विचारों और आदर्शों में श्रेष्ठता आई।

साहित्यिक विकास—रोमी विचारों और आदर्शों को श्रेष्ठ बनाने में यूनानी साहित्य का बड़ा हाथ था। रोम में आए यूनानी विद्वानों ने अपना शरीर अवश्य रोमियों को सौंप दिया था, लेकिन उनका मन अब भी स्वतंत्र था और यह उनकी निश्चित धारणा थी कि रोम पर यूनान की सांस्कृतिक विजय अवश्य होगी। अतः यूनानी विद्वानों ने रोम पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने का प्रयास आरम्भ किया। लिवियस एंड्रोनिकस नामक यूनानी विद्वान ने होमर के प्रसिद्ध काव्य ओडेसी का लैटिन भाषा में अनुवाद किया। ओडेसी का अध्ययन यूनानी विद्यार्थी करते थे। अतः जब इस ग्रंथ का अनुवाद लैटिन में हो गया तब इसका अध्ययन रोमी विद्यार्थी भी करने लगे। ओडेसी के अतिरिक्त अन्य यूनानी साहित्यिक ग्रंथों का भी लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। इस प्रकार रोम में यूनानी साहित्य का प्रचार हुआ। रोमी लोग अनुकरण करने में सिद्धहस्त थे। उन लोगों ने यूनानी साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करके लैटिन साहित्य का विकास आरम्भ किया। इस प्रकार रोमी शिक्षा क द्वितीय काल में साहित्यिक विकास हुआ और इसका प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा।

भाषा-व्याकरण का अध्ययन—कोई भी व्यक्ति कितना योग्य और सुसंस्कृत है, इसे हम कई प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं। लेकिन सबसे सरल और श्रेष्ठ उपाय यह है कि उस व्यक्ति का भाषा पर अधिकार देखा जाय। जो व्यक्ति जितनी कुशलता और सरलता से अपने भावों को व्यक्त कर सकता है, उसकी

संस्कृति उतनी ही विकसित है। इसी प्रकार किसी जाति का कितना सांस्कृतिक विकास हुआ है, इसे हम उस जाति की भाषा और साहित्य में देख सकते हैं। रोमी लोगों ने अपने सांस्कृतिक विकास के लिए भाषा पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। यूनान में भाषण-कला और तर्कशास्त्र के अध्ययन में भाषा की ओर बहुत ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक शब्द के अर्थ भली भाँति निश्चित किए जाते थे और वाक्यों की रचना व्याकरण के आधार पर होती थी। रोमी लोगों ने, जो कि आरम्भ से ही ग्रामीण जीवन व्यतीत कर रहे थे, यूनानियों के सम्पर्क में आकर भाषा-व्याकरण सीखा। लीवियस एंड्रोनिकस जिसने ओडेसी का अनुवाद लैटिन में किया था, यूनानी और लैटिन भाषा पर समान अधिकार रखता था। उसने रोमी लोगों की भाषा-शिक्षा में बड़ी सहायता की। फलतः हम देखते हैं इस काल में व्याकरण-विद्यालयों की स्थापना होने लगी और इस प्रकार भाषा का अध्ययन आरम्भ हो गया।

भाषणकला की शिक्षा—रोमी शिक्षा के द्वितीय काल में यूनानी साहित्य का लैटिन अनुवाद और भाषा-व्याकरण का प्रचार बढ़ा। फलस्वरूप रोमी लोगों में भाषा के प्रयोग की कुशलता उत्पन्न हुई और वे अब भाषा का प्रयोग सामाजिक जीवन में सुंदरतापूर्वक करने लगे। लेकिन यूनानी भाषण-कला का जब उन लोगों ने अध्ययन किया, तब उन्हें वह भी बहुत प्रियकर प्रतीत हुई और उसका भी प्रचार आरम्भ हुआ। अतः रोमी नवयुवक भाषणकला सीखने में समय देने लगे। लेकिन पुराने विचार के रोमी लोगों को यह व्यर्थ का कार्य प्रतीत हुआ क्योंकि भाषण-कला में 'बात करना' था, काम करना नहीं। रोमी लोग कर्मशील थे। उन्हें वही अच्छा लगता था जिसमें कुछ करना

हो। इसलिए भाषण-कला के शिक्षकों और विद्यालयों का राज्य की ओर से ईसा से ९२ वर्ष पूर्व विरोध हुआ। इस प्रकार रोमी शिक्षा के द्वितीय काल में परिवर्त्तन आ रहा था।

शिक्षा का उद्देश्य—रोमी शिक्षा के द्वितीय काल में शिक्षा के उद्देश्य प्रथम काल के समान थे। लेकिन परिवर्त्तन का प्रभाव शिक्षा के उद्देश्यों पर पड़ना स्वाभाविक था। अतः प्रभाव पड़ा, लेकिन वह इस काल में स्पष्ट न हुआ। यह स्पष्ट रूप हमें रोमी शिक्षा के तृतीय काल में दिखाई पड़ता है।

शिक्षा का संगठन—शिक्षा के संगठन में घर अब भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। लेकिन यूनानी प्रभाव के फलस्वरूप प्रथम काल के अंतिम भाग में प्रारम्भिक पाठशालाओं (Ludus) का खुलना आरम्भ हो गया था और ये पाठशालायें इस काल में भी चल रही थीं। इसके अतिरिक्त व्याकरण-विद्यालयों, भाषण-कला-विद्यालयों और साहित्य-विद्यालयों की स्थापना का आरम्भ हो गया था। लेकिन रोमी लोग सरलतापूर्वक अपनी प्राचीन परम्परा को छोड़कर नवीन वस्तु ग्रहण करनेवाले नहीं थे। इसलिए इस प्रकार के विद्यालयों का सामूहिक स्वागत तो नहीं हुआ, पर धीरे धीरे रोमी लोगों के संकुचित दृष्टिकोण में सुधार अवश्य होने लगा और वे इन नये विद्यालयों की उपयोगिता से परिचित होने लगे।

शिक्षा के विषय—शिक्षा के विषयों में भाषा और साहित्य का महत्त्व इस काल में बढ़ा। प्रथम काल की शिक्षा के विषयों में साहित्यक और कलात्मक पक्ष का अभाव था। लेकिन अब यूनानी काव्य लैटिन भाषा में अनूदित होकर विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने लगे। होमर की ओडेसी का लैटिन अनुवाद विद्यार्थियों की पाठ्य-

पुस्तक बन गया। इसके अतिरिक्त लैटिन साहित्य का भी विकास इस काल में हुआ और उसको भी शिक्षा के विषयों में सम्मिलित किया गया। प्रथम काल में भाषा-व्याकरण की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। इस काल में शिक्षा के विषयों में व्याकरण को भी सम्मिलित किया गया। इस प्रकार द्वितीय काल की शिक्षा के विषयों में व्याकरण और साहित्य को बढ़ाया गया। इसका कारण यूनानी प्रभाव द्वारा उपस्थित परिवर्त्तन था।

शिक्षा की पद्धति—शिक्षण पद्धति अब भी प्रथम काल के अनुसार चल रही थी। 'अनुकरण' और 'करके सीखने' की पद्धति को अब भी प्रधानता प्राप्त थी। लेकिन भाषा-व्याकरण, साहित्य और भाषण-कला की शिक्षा आरम्भ हो जाने के कारण पद्धति में 'कल्पना' और आरम्भशक्ति (Initiative) को भी स्थान मिला। अब विद्यार्थी अपनी कल्पना के सहारे ऐसी बातों को समझने की कोशिश करता था जो पूर्णतः व्यावहारिक न थीं। इसके अतिरिक्त भाषाकला में आरम्भशक्ति के लिए स्थान था क्योंकि वक्ता अपना दृष्टिकोण स्पष्ट और स्वतंत्र रूप से रख सकता था। इस प्रकार शिक्षा की पद्धति में भी परिवर्त्तन हुआ, लेकिन यह परिवर्त्तन आरम्भिक अवस्था में था और प्रथम काल की शिक्षा-पद्धति को अब भी प्रमुख स्थान प्राप्त था।

समाज पर प्रभाव—द्वितीय काल में परिवर्त्तन यूनानी विद्वानों के सम्पर्क के कारण आया। इस सम्पर्क का रोमी शिक्षा और समाज पर प्रभाव पड़ा। शिक्षा पर जो प्रभाव पड़ा, उससे हम परिचित हुए। लेकिन समाज में जो परिवर्त्तन आया, उसकी ओर हमें ध्यान देना है। अतः इस दृष्टि से द्वितीय काल के समाज में हमें एक ओर परिवर्त्तन का स्वागत दिखाई पड़ता है और दूसरी

ओर विरोध भी। समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो परिवर्त्तन का स्वागत करते हैं और कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो पुरानी परम्परा की पूजा करते और प्रत्येक परिवर्त्तन का विरोध करते हैं। अतः द्वितीय काल में ये दोनों प्रवृत्तियाँ व्यक्त थीं और इनमें से कौन अधिक शक्तिशाली है, इसे आनेवाला समय ही बता सकता था। रोमी शिक्षा के तृतीय काल में हमें ज्ञात होगा कि समाज प्रगतिशील हुआ अथवा वह अपने पुराने स्थान पर बना रहा।

रोमी शिक्षा का तृतीय काल

रोमी शिक्षा के तृतीय काल का समय ईसा से एक सौ वर्ष से लेकर दूसरी शताब्दी तक मानते हैं। अतः तृतीय काल में रोमी शिक्षा के लगभग तीन सौ वर्षों पर दृष्टिपात करना है। ऐसा करते समय हम देखते हैं कि रोमी साम्राज्य की स्थापना हो गई है और यूनानी प्रभाव भी रोमी समाज पर व्याप्त हो चुका है। लेकिन यह कैसे हुआ, जानना आवश्यक है।

साम्राज्य में शिक्षा—रोमी साम्राज्य की स्थापना और दृढ़ता में रोमी शिक्षा का बड़ा हाथ था। जिस प्रदेश को रोमी लोग जीतते थे, उस प्रदेश में रोमी-शिक्षा की व्यवस्था कर देते थे। इस व्यवस्था के फलस्वरूप नये प्रदेशों में रोम के प्रति सद्भावना और भक्ति का विकास होता था। अतः रोमी शिक्षा के तृतीय काल के अंत तक पूरे रोमी साम्राज्य में शिक्षा का स्वागत हो रहा था क्योंकि स्थान स्थान पर शिक्षालय खुल गये थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि रोमी शिक्षा तृतीय काल में सार्वजनीन हो गई थी और इसका प्रसार पूरे रोमी साम्राज्य में हो गया था। ऐसा इसलिए किया गया कि साम्राज्य के नये प्रदेशों में रोमी सभ्यता और संस्कृति का विकास हो।

साम्राज्य में एकता—रोमी शिक्षा के तृतीय काल की दूसरी विशेषता यह थी कि जिन भाषा-व्याकरण और भाषण-कला विद्यालयों का विकास द्वितीय काल में हुआ था, उनका अब प्रसार सम्पूर्ण रोमी साम्राज्य में हो गया। इसका प्रभाव यह

हुआ कि पूरे साम्राज्य में विचारों की एकता स्थापित हो गई। इतिहासकारों का मत है कि किसी देश के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता जिससे हमें यह ज्ञात हो सके कि एक बड़े भूभाग में और सैकड़ों वर्षों तक भाषा और विचारों की दृष्टि से किसी प्रकार वैषम्य न हो।

उच्च शिक्षा और सरकारी संरक्षण—रोमी शिक्षा के तृतीय काल की तीसरी विशेषता यह थी, इस समय प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षाओं के अतिरिक्त उच्च-शिक्षा की व्यवस्था हुई। विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों की स्थापना से उच्च-शिक्षा में सहायता मिली। यह कार्य रोमी शासकों की शिक्षा में अभिरुचि के कारण हो सका। रोमी शासक अब यह भली भाँति समझ गये थे कि जब तक किसी देश के शरीर और मन को न जीत लिया जाय, तब तक जीत अधूरी है। अतः शिक्षा द्वारा रोमी संस्कृति का प्रचार करके रोमी साम्राज्य के देशों में एकता स्थापित करना शासकों का उद्देश्य था और इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त शिक्षा को सरकारी सहायता और संरक्षण मिलना स्वाभाविक था। अतः तृतीय काल में उच्च-शिक्षा का विकास हुआ और शिक्षा को सरकारी संरक्षण और सहायता प्राप्त हुई।

ईसाई शिक्षा का बीजारोपण—रोमी शिक्षा के तृतीय काल में चौथी उल्लेखनीय बात यह हुई कि ईसाई धर्म का प्रचार होने लगा था और इस प्रचार का प्रभाव उन रोमी लोगों पर पड़ा जो कि किसी वास्तविक धर्म अथवा ईश्वर को नहीं मानते थे। दूसरे शब्दों में, अब शिक्षा की एक धार्मिक भूमिका तैयार होने लगी थी और आनेवाले युग के लिए ईसाई शिक्षा का 'बीजारोपण' हो गया। बीजारोपण के बाद ईसाई शिक्षा के पौदे

के विकास में समय लगा। रोमी शिक्षा के चतुर्थ काल के बाद इस बीज के अंकुर फूटे और फिर समय के साथ यह पौदा बढ़ा। इसका हम उपयुक्त स्थान पर अध्ययन करेंगे। लेकिन इसके पूर्व कि हम तृतीय काल की शिक्षा का अध्ययन करें, यह स्मरणीय है कि यह काल लगभग तीन सौ वर्षों का है और जो विशेषतायें ऊपर लिखी गई हैं, वे एक साथ उत्पन्न नहीं हुईं, वरन् वे अपने समयानुसार प्रगट हुईं। यदि हम रोम का इतिहास देखें तो ज्ञात होगा कि किस प्रकार रोम के विभिन्न सम्राटों ने शिक्षा को संरक्षण दिया। अतः यह आवश्यक है कि काल के विस्तार का हम ध्यान रखें और फिर विशेषताओं को देखें।

शिक्षा का संगठन : 'लूडस'—रोमी शिक्षा के तृतीय काल में यूनानी प्रभाव पूर्ण रूप से व्याप्त हो गया था। इस प्रभाव के कारण रोमी साम्राज्य में तीन प्रकार के विद्यालयों की स्थापना हो चली थी। पहला विद्यालय प्रारम्भिक पाठशाला के समान था। इसे 'लूडस' (Ludus) कहते थे। 'लूडस' का प्रचार द्वितीय काल ही में हो गया था। लेकिन तृतीय काल में इसकी व्यवस्था में किसी प्रकार की त्रुटि न रही। पहले 'लूडस' में लिखना, पढ़ना, साधारण गणित की शिक्षा दी जाती थी और साथ ही बालकों को 'बारह नियम' रोम की पौराणिक कथायें तथा वीरों की कहानियाँ भी सुनाई जाती थीं। अब तृतीय काल में 'लूडस' में दी जानेवाली शिक्षा के विषयों में काव्य और साहित्य भी सम्मिलित किये गये। 'ओडेसी' के लैटिन अनुवाद ने बारह नियमों का स्थान ले लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'लूडस' की शिक्षा के विषयों में साहित्य और काव्य को पर्याप्त स्थान दिया गया।

'लूडस' की शिक्षा पद्धति—'लूडस' की शिक्षा पद्धति इस काल में भी 'अनुकरण' पर आधारित थी। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को 'रटना' भी पड़ता था। चाहे विद्यार्थी की रुचि हो या न हो, उसके लिए रटना आवश्यक था। अतः आरम्भ में बालक अक्षरज्ञान प्राप्त करता था, और फिर उसे विभिन्न संयुक्ताक्षरों का अध्ययन कराया जाता था। इस अध्ययन में बालकों की रुचि न होती थी क्योंकि जो कुछ वे पढ़ते थे उसका सम्बन्ध उनके जीवन और अनुभव से न था। साधारण गिनती सिखाने का भी तरीका नीरस था। इसलिए फिर क्यों विद्यार्थी अध्ययन में अभिरुचि रखें। उस समय शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक नहीं जानते थे। इसलिए अध्ययन में रुचि उत्पन्न करने का उन्हें एक ही उपाय ज्ञात था और वह उपाय बालकों को मारना था। अतः प्रारम्भिक पाठशालाओं में बालकों को बड़ी मार पड़ती थी। मार खाने के कारण बालक शिक्षालयों से घबराते थे और उन्हें शिक्षकों से डर मालूम पड़ता था। समाज में भी लोग शिक्षकों को ऐसे नामों से सम्बोधित करने लगे जिनसे उनकी निर्दयता और कठोरता का आभास मिलता था। इस प्रकार तृतीय काल में प्रारम्भिक शिक्षा चल रही थी।

व्याकरण विद्यालय—तृतीय काल में यूनानी और लैटिन व्याकरण के विद्यालयों का पूर्ण विकास हुआ। इसका कारण शिक्षा के विषयों में साहित्य का समावेश था। साहित्य के लिए शुद्ध भाषा का अध्ययन आवश्यक था। रोमी शिक्षा के द्वितीय काल में ही व्याकरण विद्यालयों का आरम्भ हो गया था, लेकिन तृतीय काल में उनका कार्य पूर्ण रूप से चल रहा था। यद्यपि इन विद्यालयों की रूप-रेखा माध्यमिक विद्यालयों के समान थी, मगर फिर भी इनका सम्बन्ध 'लूडस' अथवा

प्रारम्भिक पाठशालाओं से था क्योंकि उनमें भी व्याकरण की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस प्रकार व्याकरण विद्यालयों की आरम्भिक कक्षायें 'लूडस' के समान थीं, लेकिन अन्य कक्षाओं में माध्यमिक योग्यता की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

व्याकरण विद्यालय के विषय—जैसा कि हमें ज्ञात है, व्याकरण विद्यालय दो प्रकार के थे। एक तो यूनानी व्याकरण विद्यालय था और दूसरा लैटिन व्याकरण विद्यालय। यूनानी व्याकरण विद्यालय में रोमी विद्यार्थी पहले जाते थे और फिर लैटिन व्याकरण विद्यालय में। इसका कारण यह था कि लैटिन व्याकरण का विकास यूनानी व्याकरण से प्रभावित था। अतः लैटिन व्याकरण का अध्ययन यूनानी व्याकरण के ज्ञान के कारण सरल हो जाता था। इसके अतिरिक्त पाठ्य-विषय में भी समानता थी। शब्दों की उत्पत्ति तथा व्याकरण के अन्य अंगों के अध्ययन के अतिरिक्त छंद, कविताओं का अर्थ और शुद्ध भाषा के प्रयोग आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। इन व्याकरण विद्यालयों में साहित्य का अध्ययन होता था। इतना ही नहीं, विद्यार्थियों की साहित्यिक अभिरुचि का विकास करने के लिए प्रसिद्ध साहित्य-कारों की रचनाओं के उत्कृष्ट अंश भी विद्यार्थी लिखते और उनकी आलोचना करते थे। तात्पर्य यह है कि व्याकरण विद्यालय केवल व्याकरण की ही शिक्षा नहीं देते थे, वरन् साहित्य के अध्ययन की ओर भी पर्याप्त ध्यान देते थे। जहाँ तक शिक्षा के अन्य विषयों का सम्बन्ध है, उन्हें भी व्याकरण विद्यालय में पढ़ाया जाता था। गणित, भूगोल, संगीत और व्यायाम की शिक्षा भी व्याकरण विद्यालयों में दी जाती थी, जिससे कि विद्यार्थी की शिक्षा इन्हीं विद्यालयों में पूरी हो और उसे अन्यत्र न जाना पड़े। लेकिन यह तो इन विद्यालयों के नाम से ही

स्पष्ट है कि इनमें व्याकरण की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी।

उच्च-शिक्षा—यूनानी प्रभाव के फलस्वरूप रोम में भाषण-कला की शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया था। अतः आरम्भ में भाषण-कला और अलंकार (Rhetorics) की शिक्षा यूनानी भाषा में दी जाती थी। लेकिन रोमी शिक्षा के तृतीय काल में यह शिक्षा लैटिन भाषा के माध्यम से होने लगी। यह तृतीय काल की विशेषता थी कि भाषण-कला की शिक्षा में लैटिन भाषा का प्रयोग किया गया। दूसरी बात इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भाषण-कला में केवल सुंदर भाषा की ही आवश्यकता नहीं होती, वरन् विचारों की श्रेष्ठता भी आवश्यक है। कौन सी बात कैसे कही जाय, यह भी जानना आवश्यक है। अतः भाषण-कला की शिक्षा में भाषा के अलंकरण ही की ओर ध्यान न देकर तर्क, न्याय, इतिहास तथा अन्य सामाजिक विषयों को भी सम्मिलित किया जाता था। दूसरे शब्दों में भाषण-कला की शिक्षा द्वारा विद्यार्थी का मानसिक और नैतिक विकास किया जाता था। इस प्रकार रोम में भाषण-कला की शिक्षा द्वारा व्यक्ति में पर्याप्त सुधार किया गया। एफ० पी० ग्रेवज् ने रोमी शिक्षाशास्त्री क्विंटैलियन का एक उद्धरण दिया है, जिसे यहाँ भी देना अपेक्षित है क्योंकि इसके आधार पर हम उच्च रोमी शिक्षा की कल्पना सरलतापूर्वक कर सकेंगे:—

'कोई योग्य और कुशल भाषण-कर्त्ता बिना अच्छा मनुष्य हुए नहीं हो सकता; इसलिए हम उससे केवल अच्छे भाषण की ही आशा नहीं रखते, वरन् मन (Mind) की श्रेष्ठता और निर्मलता भी चाहते हैं। कुछ लोगों की भाँति मैं यह कभी नहीं मानता कि नैतिकता और चरित्र के सिद्धान्त केवल दार्शनिकों के लिए हैं।

जो व्यक्ति अपने नागरिक चरित्र को जानता है, जो समाज के शासन-कार्य के योग्य है, जो बुद्धि और विचार से राज-काज चला सकता है न्याय से झगड़े का निपटारा कर सकता है, वह कुशल वक्ता (Orator) के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं हो सकता।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुशल वक्ता में कितने गुण अपेक्षित थे और उसका कितना सम्मान था। अतः भाषण-कला में सम्पूर्ण उच्च शिक्षा सम्मिलित थी क्योंकि विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना पड़ता था और साथ ही अपने को समाज और शासन के उपयुक्त बनाना पड़ता था।

विश्वविद्यालयों की स्थापना—रोमी शिक्षा के तृतीय काल में विश्वविद्यालयों का भी संगठन हुआ। सिकन्दरिया और एथेन्स के विश्वविद्यालय अब भी चल रहे थे। अतः रोमी युवक उच्च शिक्षा के निमित्त इन विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए जाते थे। इसके अतिरिक्त रोम तथा रोमी साम्राज्य के कुछ दूसरे प्रसिद्ध स्थानों में विश्वविद्यालय खोले गये। इस प्रकार तृतीय काल में कई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इनके लिए वे पुस्तकें बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई जो यूनान तथा अन्य पूर्वी देशों के विजय के समय प्राप्त हुई थीं। लेकिन जैसा कि रोमी स्वभाव था, उच्च शिक्षा मे अब भी व्यावहारिकता की किसी न किसी रूप में प्रधानता थी। यूनानी दार्शनिकता रोमी व्यावहारिकता पर अधिकार न जमा सकी।

इस काल में जहाँ तक शिक्षा के उद्देश्य, पद्धति, आदि का सम्बन्ध है, वे द्वितीय काल के समान थीं। अतः उनका अलग वर्णन अपेक्षित नहीं है। लेकिन पूर्व इसके कि हम रोमी शिक्षा

के चतुर्थ और अंतिम काल का अध्ययन करें, यह याद रखना चाहिए कि यदि रोमी शिक्षा का कोई स्वर्ण-युग था, तो वह 'तृतीय काल' था ।

रोमी शिक्षा का अंतिम काल

रोमी शिक्षा के इतिहास के आरम्भ से लेकर उन्नति तक का अध्ययन हमने किया। अब हमें उन कारणों को देखना है जिनसे रोमी शिक्षा का पतन हुआ। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि जब किसी देश में प्रगतिशील शक्तियाँ कार्य करती रहती हैं, तब उसी समय प्रतिक्रियावादी (Reactionary) प्रवृत्तियाँ भी समाज में जाग्रत होती हैं। यह समझना कि उन्नति-काल में केवल प्रगतिशील शक्तियाँ कार्य करती हैं, ग़लत है। रोमी शिक्षा के इतिहास में भी यही बात दिखाई पड़ती है। एक ओर रोम में विकास हो रहा था, और दूसरी ओर उसके अंत के बीज भी पड़ रहे थे। अतः हम देखते हैं कि रोम के विद्वान् टेसीटस (Tacitus) ने सन् ७९ ई० में ही रोमी-शिक्षा के ह्रास की ओर संकेत किया था। लेकिन जिस ह्रास की ओर टेसीटस ने संकेत किया था, वह नहीं के बराबर था। इसलिए उस ओर अधिक ध्यान नहीं गया क्योंकि उस समय क्विंटीलियन जैसा शिक्षाशास्त्री शिक्षा के प्रसार में लगा हुआ था और राज्य भी शिक्षा में अभि-रुचि रखने लगा था। लेकिन रोमी शिक्षा के तृतीय काल के बाद ईसा की तीसरी सदी के अंत और चौथी सदी के आरम्भ में रोमी-शिक्षा का पतन होने लगा। इस पतन का कारण रोमी-समाज था। अतः हमें रोमी समाज का अध्ययन करना चाहिए।

सामाजिक दशा—रोमी साम्राज्य के कई सम्राट शिक्षा और समाज में दिलचस्पी रखते थे। उनमें कुछ 'लोकतंत्र' की भावना का भी विकास हुआ। लेकिन इस लोकतंत्र की भावना में

सम्राट अपना ही हित सोचते थे। यदि जनता के लिए लोकतंत्र की व्यवस्था होती थी, तो उसके पीछे शोषण की भावना भी रहती थी। इस प्रकार लोकतंत्र के नाम पर सम्राट कारकल्ल (Caracalla) ने २१२ ई० में यह घोषित किया कि रोमी साम्राज्य के सभी नागरिक 'स्वतंत्र व्यक्ति' समझे जायेंगे। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि रोमी साम्राज्य में दास और ग़रीबों की अधिकता थी और केवल थोड़े से धनी और शासक वर्ग के लोग उच्च शिक्षा तथा अन्य सुविधाओं का उपभोग करते थे। लेकिन यूनानी प्रभाव के कारण रोमी साम्राज्य में लोकतंत्र की भावना का विकास हुआ और साथ ही ईसा मसीह के उपदेशों के कारण ऊँच-नीच का भेद-भाव कम होने लगा। ईश्वर के सामने सब बराबर थे, फिर सम्राट के सामने क्यों न हों। अतः रोमी साम्राज्य के सभी लोगों को (नागरिक) पद दिया गया और वे स्वतंत्र समझे जाने लगे। लेकिन इस 'स्वतंत्रता' की सुविधा को कम करने के लिए सम्राट ने यह अनिवार्य कर दिया कि हर एक नागरिक स्थानीय शासन (Municipal board) का व्यय दे। इस प्रकार नये कर का बोझ लोगों पर पड़ा। रोमी साम्राज्य में ग़रीब अधिक थे। वे इस नये व्यय के लिए कहाँ से धन लाते? इसलिए वे इस नवीन 'नागरिकता' से जान बचाने के लिए भागने लगे। जो लोग सरकारी काम में लग जाते थे, उनकी बचत हो जाती थी। बहुत से लोग सेना में भी भर्ती हुए। लेकिन सब के लिए सेना में स्थान कहाँ? कुछ लोग शिक्षक बने तो कुछ पादरी। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे लोग भी आए जिनके लिए शिक्षा पलायन (Escape) का एक साधन थी।

साम्राज्य में दुर्व्यवस्था—रोमी शिक्षा के पतन का दूसरा कारण शासन की दुर्व्यवस्था थी। सम्राट की इच्छा ही कानून

का काम करती। इसलिए एक प्रकार की तानाशाही स्थापित हो गई। राज्य के अधिकारीगण भी अपने को जनता से अलग समझने लगे और सेवा के बदले शासन करने लगे। इतना ही नहीं चारों ओर घूसखोरी का बाज़ार गर्म था। रोम में जिन बारह नियमों की मान्यता थी, उन्हें लोग भूल चले थे और न्यायाधीश तक घूस लेने लगे थे। जितने अधिकारी थे, वे किसी न किसी बहाने जनता को चूसने लगे थे। इस प्रकार पूरी शासन-व्यवस्था चौपट हो गई थी। यह किसी भी साम्राज्य के अंत के लिए पर्याप्त था। यह ऐतिहासिक सत्य है कि जब किसी शासन का अन्त होने लगता है, तब उसकी व्यवस्था बिगड़ जाती है। अतः रोम की शासन-व्यवस्था बहुत खराब हो चली और नैतिकता का कहीं नाम भी सुनाई न पड़ता था। इस प्रकार रोम की जनता का शोषण हुआ और रोमी साम्राज्य दुर्व्यवस्था से जर्जर हो गया। लेकिन शासक और धनीवर्ग फूलने-फलने लगा। इस वर्ग ने जी खोल कर गरीबों को लूटा और इनका लोभ इतना बढ़ गया कि किसी के पास कुछ न बचा। इस प्रकार शोषक वर्ग अपार धन एकत्रित कर रोमी जनता की छाती पर चढ़ बैठा, और चैन की बंशी बजाने लगा। अब इस वर्ग को रोमी-साम्राज्य की चिंता न थी। इसने सुख और आराम में दिन व्यतीत करना शुरू किया और समय काटने के लिए काव्य, कला और साहित्य से प्रेम किया।

नैतिक पतन—जिस समाज में शोषण और दुर्व्यवस्था का बोलबाला हो, उसके नैतिक पतन की गहराई का अंत कहाँ? शोषण करते समय ईमानदारी और सचाई का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जिस प्रकार भी हो शोषण उचित है। इस प्रकार जो लोग गरीबों का खून चूस कर मोटे बने, उनके लिए नैतिकता

केवल मूर्खता की निशानी थी। इसलिए शोषक वर्ग दुराचार और व्यभिचार में लीन हो गया। प्राचीन रोम में जो भी नैतिकता थी, उसका भी अंत हो गया। इस प्रकार रोमी समाज में चारों ओर नैतिक पतन भी दिखाई पड़ने लगा। अतः ऐसे समाज में शिक्षा की ओर कौन ध्यान देता ? शिक्षा तो उसी समाज में उन्नति करती है जिसमें शोषण न हो और जहाँ नैतिकता हो। समाज के आर्थिक पतन के साथ नैतिक पतन का होना अनिवार्य है। इसलिए रोमी समाज का नैतिक पतन हुआ और साथ ही संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की दीवारें भी गिरने लगीं। अब प्रतिक्रियावादी शक्तियों का जोर था। प्रगतिशील शक्ति दब गई थी, मगर फिर भी उभरने की कोशिश कर रही थी और इसे ईसाई धर्म के प्रचार द्वारा उठने में सहायता मिली।

शिक्षा का उद्देश्य—पतित-समाज में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति और समाज का हित कैसे हो सकता था ? अब तो शोषक वर्ग जिसमें थोड़े से लोग थे, उनके लिए शिक्षा थी। यह शोषक वर्ग अपने दिन चैन से व्यतीत करना चाहता था। अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिवादी हो गया और व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में लग गया। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास केवल व्यक्ति के हित में था। समाज से शिक्षा का सम्बन्ध टूट गया।

शिक्षा का संगठन—अब शिक्षा केवल शोषक वर्ग के लिए थी। जनता के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी और जनता ग़रीबी के कारण शिक्षा प्राप्त भी कैसे करती ? इसलिए रोमी शिक्षा के अंतिम काल में शिक्षा का संगठन ऐसा हो चला

जो केवल धनी लोगों के बालकों को शिक्षा प्रदान कर सकता था। ग़रीबों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी क्योंकि अब रोमी साम्राज्य में कुछ लोगों का बोलबाला था, और वे शासन को अपने हाथ में रखने के लिए जनता को निरक्षर रखना चाहते थे।

शिक्षा के विषय—शिक्षा के विषय अब व्यक्तिवादी और स्वार्थी प्रवृत्तियों को विकसित करते थे। कला, काव्य और साहित्य की शिक्षा सौंदर्यबोध और आत्म-विकास के लिए न होकर, वासना के लिए होती थी। इसके अतिरिक्त शिक्षा के ऐसे विषय भी न थे जो श्रद्धाभाव और धार्मिक विश्वास में सहायक होते। उस समय समाज में 'धर्म' का कोई महत्त्व न था। केवल वासना ही सब कुछ थी। इसलिए शिक्षा के जितने विषय थे, उनसे चरित्र-निर्माण में सहायता नहीं मिलती थी, वरन् वे सांसारिक सुखों के उपयोग की ओर अधिक ध्यान देते थे। शिक्षा के विषयों की उपयोगिता कम हो गई।

शिक्षा की पद्धति—शिक्षा की पद्धति में व्यावहारिकता का अभाव हो चला और इसके स्थान पर विद्यार्थियों को साहित्य की ओर आकृष्ट किया गया। साथ ही यूनानी सोफिस्टों की भाँति अब रोमी साम्राज्य में भी यात्री शिक्षक होने लगे। ये शिक्षक घूम घूम कर भाषण-कला की शिक्षा देते थे। इनकी शिक्षा में तत्त्व तो कुछ न था। लेकिन इनसे मनोरंजन अवश्य होता था। इस प्रकार अंतिम काल में शिक्षा की पद्धति कृत्रिम, निर्जीव और समाज के लिए अहितकर हो गई।

समाज पर प्रभाव—अंतिम काल में रोमी साम्राज्य की दीवारें गिर रही थीं। समाज में वासना और व्यभिचार इतना

बढ़ गया था कि शिक्षा भी कुछ न कर सकी। जिस शिक्षा ने रोमी साम्राज्य के प्रसार और दृढ़ता में सहायता पहुँचाई थी, वह शिक्षा अब बदल गई थी, क्योंकि अब वे शिक्षा के उद्देश्य न थे, संगठन न था, पद्धति न थी, विषय न थे। अतः ऐसी स्थिति में यह हुआ कि रोमी साम्राज्य का अंत और निकट आ गया और भविष्य में जब बर्बर जातियों का रोम पर हमला हुआ तो थोड़े से धनी और शोषक सामना न कर सके क्योंकि अब उन्हें जनता का सहयोग प्राप्त न था।

लेकिन अंतिम काल के इस अँधेरे में, ईसा मसीह की शिक्षा का प्रकाश भी फैलना शुरू हो गया था। जिस जनता को रोमी शोषकों ने निर्जीव कर दिया था, उसमें ईसा के उपदेशों ने जान डाल दी, और वह फिर उठने लगी। इसी के साथ यूरोप में एक नये इतिहास का आरम्भ होता है। एक के अंत में दूसरे का आरम्भ निहित है।

क्विंटीलियन और उसकी शिक्षा

इसके पूर्व कि हम रोमी शिक्षा के इतिहास को समाप्त करें, यह आवश्यक है कि रोम के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री क्विंटीलियन से परिचित हो लें। जिस प्रकार यूनानी शिक्षा में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू का महत्त्व है, उसी प्रकार रोमी शिक्षा में सिसरो (Cicero) और क्विंटीलियन का महत्त्व है। सिसरो ने अपनी रचना 'ब्रूटस' (Brutus) और 'डि ओरेटोर' (De Oratore) में रोमी शिक्षा का सुंदर वर्णन किया है। सिसरो एक महान् लेखक था। उसकी गद्य-शैली का प्रभाव पश्चिमी देशों की गद्य-शैली में आज भी दिखाई देता है। लेकिन शिक्षा की दृष्टि से क्विंटीलियन (Quintilian) का महत्त्व सिसरो से अधिक है।

प्रारम्भिक जीवन—क्विंटीलियन का जन्म स्पेन के कैलागिरस नामक स्थान में सन् ३५ ई० के लगभग हुआ था। क्विंटीलियन आरम्भ से ही प्रतिभाशील था। उसका मन अध्ययन में लगता था और वह एक योग्य वक्ता (Orator) बनना चाहता था। अतः क्विंटीलियन ने रोम में आकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद, क्विंटीलियन वैतनिक शिक्षक बना। उस समय रोम में वैतनिक शिक्षकों की प्रथा चल पड़ी थी और शिक्षण कार्य भी जीविका का एक साधन बन गया था।

शिक्षक और लेखक—क्विंटीलियन एक योग्य शिक्षक

था। उसने शिक्षण कार्य करते समय अपने अनुभव और निरीक्षण का प्रयोग किया। धीरे-धीरे उसने शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग का पूर्ण अध्ययन किया। साथ ही कुशल वक्ता होने के नाते क्विंटीलियन का दर्शन, इतिहास, तर्क, आदि विषयों पर भी अधिकार था। इसलिए कुछ समय के बाद क्विंटीलियन ने अध्यापन कार्य छोड़ कर लेखन कार्य आरम्भ किया। इस समय उसकी अवस्था ५३ वर्ष की हो गई थी और वह पूर्ण अनुभवी बन चुका था। अतः जो कुछ क्विंटीलियन ने लिखा, उसमें तथ्य था। उसके विचार इतने मौलिक और श्रेष्ठ थे कि अट्ठारहवीं सदी तक, उनका प्राधान्य था। क्विंटीलियन का ग्रंथ 'इंस्टीट्यूट ऑफ ओरेटरी' (Institute of Oratory) बहुत प्रसिद्ध है। इसमें उसने शिक्षा सम्बन्धी अपने विचार भी व्यक्त किए हैं।

शिक्षा का उद्देश्य—क्विंटीलियन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास और चरित्र-निर्माण होना चाहिए। बिना अच्छे चरित्र के मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। समाज की दृष्टि से व्यक्ति में मानव स्वभाव की परख होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में क्विंटीलियन व्यक्ति के व्यवहारों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पक्ष में था। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्विंटीलियन ने चरित्र-निर्माण और मानव-स्वभाव के अध्ययन को शिक्षा के उद्देश्यों के रूप में स्वीकार किया। इसका कारण यह था कि उस समय लोग चरित्र की ओर कम ध्यान देते थे और साथ ही व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध की अवहेलना भी होती थी।

शिक्षा का संगठन—क्विंटीलयन के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा का उत्तरदायित्व माता-पिता पर था। बालक पर परम्परा और परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है। अतः यह आवश्यक था

कि आरम्भ ही से बालक की शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाय और उसमें अच्छी आदतें डाली जाँय। इसके अतिरिक्त क्विंटीलियन ने, साहित्यिक और वक्ता होने के नाते, शिक्षा का ऐसा संगठन किया जिसमें शारीरिक विकास की कम और मानसिक तथा नैतिक विकास की अधिक संभावना थी। क्विंटीलियन की बालकों के सम्बन्ध में यह धारणा थी कि उनमें बड़ी शक्ति होती है। अतः उनसे अधिक परिश्रम कराया जाय। इसलिए शिक्षा के संगठन में ऐसी व्यवस्था की गई कि बालकों को अधिक परिश्रम करना पड़े। लेकिन उसका यह कार्य अनुचित था।

शिक्षा के विषय—क्विंटीलियन कुशल वक्ता के लिए साहित्य, दर्शन, तर्क, इतिहास, गणित आदि का अध्ययन आवश्यक समझता था। इसलिए उसने अपनी शिक्षा योजना में भी इन विषयों को स्थान दिया। भाषा और व्याकरण का अध्ययन कुशल भाषण-कर्त्ता के लिए आवश्यक था। इसलिए क्विंटीलियन व्याकरण के अंतर्गत भाषा का शुद्ध प्रयोग और काव्य की आलोचना भी रखता था। काव्य की आलोचना के साथ-साथ लिखने-पढ़ने की भी व्यवस्था थी। इस प्रकार एक विद्यार्थी साहित्यालोचन की सहायता से अपने में विचार-शक्ति और तर्क-शक्ति उत्पन्न कर सकता था। विद्यार्थी को संगीत-शिक्षा भी दी जाती थी क्योंकि यह स्वर के चढ़ाव-उतार में सहायक होती थी। वक्ता के स्वर में यदि कोई दोष है तो वह कुशल वक्ता नहीं हो सकता। इसलिए संगीत की शिक्षा से स्वर की साधना होती थी। गणित के अध्ययन से तर्क-शक्ति का विकास और मनुष्य की विचार-प्रणाली में सुधार होता है। इसलिए गणित का अध्ययन भी आवश्यक है। तात्पर्य यह है

कि क्विंटीलियन ने शिक्षा में उन सभी विषयों को स्थान दिया जो एक कुशल वक्ता के लिए आवश्यक थे।

शिक्षा की पद्धति—शिक्षा की पद्धति की ओर क्विंटीलियन ने बड़ा ध्यान दिया। उसके अनुसार अध्यापक में सर्वप्रथम विद्यार्थी के लिए स्नेह और सहानुभूति होनी चाहिए। दूसरे शिक्षा की पद्धति मनोरंजक हो। तीसरे, बालक को शारीरिक दंड न दिया जाय। यह उल्लेखनीय है कि क्विंटीलियन के काल में शारीरिक दंड का प्रचार था और बालक बुरी तरह पीटे जाते थे। लेकिन क्विंटीलियन ने इसका विरोध किया और कहा कि बालक को मारने के बजाय प्यार से समझाना चाहिए और शिक्षण-पद्धति को मनोरंजक बनाना चाहिए। यहाँ हम देखते हैं कि क्विंटीलियन के ये विचार आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों से मिलते-जुलते हैं।

क्विंटीलियन की शिक्षा-पद्धति की दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि वह आरम्भ में बालकों की शिक्षा खेल द्वारा चाहता था। छोटे बच्चों को खेलना प्रिय होता है। इसलिए उनकी प्रारम्भिक शिक्षा की पद्धति में खेल की प्रधानता आवश्यक है। शिक्षा की आधुनिक योजनाओं में भी खेल की प्रधानता स्वीकार की गई है। शिक्षा-मनोविज्ञान में यदि हम 'खेल' का अध्ययन करें तो 'खेल द्वारा शिक्षा' स्पष्ट रूप से समझ जायेंगे। इस प्रकार क्विंटीलियन ने शिक्षा की पद्धति में ऐसे परिवर्त्तन किए जो आनेवाले समय के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुए।

समाज पर प्रभाव—क्विंटीलियन रोमी शिक्षा के स्वर्ण-युग का शिक्षा-शास्त्री था। अतः उसके शिक्षा-सिद्धान्तों का अनुसरण हुआ और फलस्वरूप नैतिकता की ओर भी ध्यान

दिया गया। लेकिन इसी काल में प्रतिक्रियावादी और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के बीज भी पड़ [illegible] । इसकी [illegible] क्विंटीलियन का [illegible] और [illegible] स्वभाव [illegible] अध्ययन की [illegible] ताई। [illegible] बार-बार नैतिकता और चारित्र- [illegible] देता था। क्योंकि वह जानता था कि रोमी-साम्राज्य [illegible] अंत नैतिक पतन से होगा।

क्विंटीलियन दूरदर्शी था। वह आनेवाले युग की कल्पना कर सकता था। इसलिये उसके शिक्षा-सिद्धान्त ऐसे बने जो पंद्रह सौ वर्ष बाद भी उपयोगी समझे गये। यूरोपीय शिक्षा के इतिहास के पंद्रहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक क्विंटीलियन के विचारों का बोलबाला था। अतः इस काल में क्विंटीलियन के शिक्षा-सिद्धान्तों के फलस्वरूप शिक्षा में बालक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया और उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ हुआ। क्विंटीलियन एक साथ कई विषयों के अध्ययन के पक्ष में था। इसे भी पंद्रहवीं सदी के शिक्षा-शास्त्रियों ने स्वीकार किया, और आगे आनेवाले काल में क्विंटीलियन के विचारों के आधार पर शिक्षा की नई धारायें प्रवाहित हुईं। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्विंटीलियन ने न केवल अपने तत्कालीन समाज के नैतिक उत्थान की ही चेष्टा की, वरन् उसने ऐसे विचार प्रस्तुत किये जो भविष्य के समाज-निर्माण में बहुत ही सहायक हुए।